ओ३म्

विदुर-नीति काव्यानुवाद

रचयिता सुमन्तसिंह [illegible]

निवास व डाकघर खुब्बनपुर

पूर्व जिला प्रधान

जिला आर्य उप प्रतिनिधि सभा हरिद्वार

वैशम्पायन उवाच

द्वाःस्थं प्राह महाप्राज्ञो धृतराष्ट्रो महीपतिः।
विदुरं द्रष्टुमिच्छामि तमिहानय मा चिरम् ॥1॥

भावार्थ : दोहा- धृतराष्ट्र महाराजने, विदुर बुलावन हेत।
द्वारपाल भेजा तुरन्त, करें कि उन से भेंट॥

प्रहितो धृतराष्ट्रेण दूतः क्षत्तारमब्रवीत्।
ईश्वरस्त्वां महाराजो महाप्राज्ञ दिदृक्षति ॥2॥

भावार्थ : वह नृप की आज्ञा को पाकर, महाप्राज्ञ विदुर के पास गया।
कृतज्ञ करें घर पर आकर, यह धृतराष्ट्र का वचन कहा॥

विशेष : क्षत्ता का अर्थ है दासी से उत्पन्न। ये व्यास द्वारा विचित्रवीर्य की पत्नी अम्बिका की दासी से उत्पन्न नियोगज पुत्र थे।

एवमुक्तस्तु विदुरः प्राप्य राजनिवेशनम्।
अब्रवीद् धृतराष्ट्राय द्वाःस्थं मां प्रतिवेदय ॥3॥

भावार्थ : दूत के द्वारा पा के खबर, विदुर धृतराष्ट्र आवास आये।
और द्वारपाल से कहा कहो, राजा से द्वार पर विदुर खड़े॥

द्वाःस्थ उवाच

विदुरोऽयमनुप्राप्तो राजेन्द्र तव शासनात्।
द्रष्टुमिच्छति ते पादौ किं करोतु प्रशाधि माम् ॥4॥

भावार्थ : राजा से बोला द्वारपाल, आदेश आपका पा करके।
मिलने को विदुर जी हाजिर हैं, क्या आज्ञा कहो कृपा करके॥

धृतराष्ट्र उवाच

प्रवेशय महाप्राज्ञं विदुरं दीर्घदर्शिनम्।
अहं हि विदुरस्यास्य नाऽकल्पो जातु दर्शने ॥5॥

भावार्थ : तब द्वारपाल से बोले नृप, उन्हें फौरन अन्दर ले आओ।
इच्छुक रहता दर्शन के लिए, असमर्थ न इसमें कुछ पाओ॥

द्वाःस्थ उवाच

प्रविशान्तःपुरम् क्षत्तर्महाराजस्य धीमतः ।
न हि ते दर्शनेकल्पो जातु राजाऽब्रवीद्धि माम् ॥6॥

भावार्थ : मिल दर पै विदुर से द्वारपाल, बोला शाही रनिवास चलें।
आदर से बुलाया श्रीमन् को, और कहा कभी भी वे मिल लें॥

वैशम्पायन उवाच

ततः प्रविश्य विदुरो धृतराष्ट्रनिवेशनम् ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं चिन्तयानं नराधिपम् ॥7॥

भावार्थ : सन्देश नृप का पाके विदुर, तब अन्तःपुर में जाते हैं।
अभिवादन करके विनय सहित, यूं राजा से फरमाते हैं॥

विदुरोऽहं महाप्राज्ञ सम्प्राप्तस्तव शासनात् ।
यदि किञ्चन कर्तव्यमयमस्मि प्रशाधि माम् ॥8॥

भावार्थ : आज्ञा से आपकी हाजिर हूँ, मेरे लिए आदेश करो।
सेवक को याद किया क्यों कर, कृपया सभी सन्देश कहो॥

धृतराष्ट्र उवाच

सञ्जयो विदुर प्राप्तो गर्हयित्वा च मां गतः ।
अजातशत्रोः श्वो वाक्यं सभामध्ये स वक्ष्यति ॥9॥

भावार्थ : बोले विदुर से नृप! कि संजय, आ गया है पाण्डवों से मिलकर।
सन्देश सभा में कल देगा, मुझे लौटा बुरा भला कहकर।।

तस्याद्य कुरुवीरस्य न विज्ञातं वचो मया ।
तन्मे दहति गात्राणि तदकार्षीत् प्रजागरम् ॥10॥

भावार्थ : युधिष्ठर क्या कहना चाहता ? मुझे इसका कोई पता नहीं।
पर मन मेरा आहत इतना, कि नींद जरा भी आती नहीं॥

जाग्रतो दह्यमानस्य श्रेयो यदनुपश्यसि ।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥11॥

भावार्थ : चिन्ता से तप्त हूँ जगे अगे, हित में मेरे सद् वचन कहो।
हो राज धर्म में कुशल तुम्हीं, मेरी पीड़ा का हरण करो॥

यतः प्राप्तः सञ्जयः पाण्डवेभ्यो
न मे यथावन्मनसः प्रशान्तिः ।
सर्वेन्द्रियाण्यप्रकृतिं गतानि
किं वक्ष्यतीत्येव हि मेऽद्य चिन्ता ॥ 12 ॥

भावार्थ : पाण्डवों ढिंग से, संजय ने लौट, जिस भांति वाद विवाद किया।
अति व्याकुल और अधीर हूँ मैं, मध्य सभा कहेगा वह क्या क्या ?

विदुर उवाच

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीनसाधनम् ।
हृतस्वं कामिनं चौरमाविशन्ति प्रजागराः ॥ 13 ॥
कच्चिदेतैर्महादोषैर्न स्पृष्टोऽसि नराधिप।
कच्चिन्न परवित्तेषु गृध्यन्न परितप्यसे ॥ 14 ॥

भावार्थ : दुर्बल, कामी, दबे, निःसाधन, धन जिसका हरण हो जाता है।
और चोरी किसी की करता हो, नहीं इनमें कोई सो पाता है ?
गैर का धन पाने की हवस, क्या तुमको नृप सताती है ?
यह भी कारण है बड़ा खास, इससे भी नींद नहीं आती है।।

धृतराष्ट्र उवाच

श्रोतुमिच्छामि ते धर्म्यं परं नैःश्रेयसं वचः ।
अस्मिन् राजर्षिवंशे हि त्वमेकः प्राज्ञसम्मतः ।।15।।

भावार्थ : बोले नृप मैं तुम से विदुर! सुख प्रद धर्म के वचनों को।
सुनने की इच्छा रखता हूँ, कुरुवंश में तुम्हीं बस सिद्धविज्ञ हो।।

विशेष नोट : इस श्लोक के पश्चात निम्न प्रक्षिप्त श्लोक हैं–

विदुर उवाच

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्याधिपो भवेत् ।
प्रेष्यस्ते प्रेषितश्चैव धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः ॥1॥
विपरीततरश्च त्वं भागधेये न सम्मतः ।
अर्चिषां प्रक्षयाश्चैव धर्मात्मा धर्मकोविदः ॥2॥

आनृशंस्यादनुक्रोशाद्धर्मात्सत्यात्पराक्रमात् ।
गुरुत्वात्त्वयि सम्प्रेक्ष्य बहून् क्लेशाँस्तितिक्षते ॥3॥
दुर्योधने सौबले च कर्णे दुःशासने तथा।
एतेष्वैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥4॥

भावार्थ : त्रिलोक का स्वामी बनने योग्य, जो सभी गुणों में सच्चा है।
अति प्रिय नृप! तुम को होता, उसे वन में आपने रक्खा है॥
धर्मात्म भले धर्मज्ञ हो तुम, पर ज्ञान दृष्टि न रखते हो।
और आंख रश्मि न होने से, नहीं शासक तुम बन सकते हो॥
सरल निछल धर्म - सत्यारुढ़, पराक्रमी गुणों को रखते हुए।
पर आप का गौरव भक्ति स्नेह, जीता है युधि, कष्ट सहते हुए।
दुःशासन दुर्योधन शकुनि कर्ण, ऐसे दुष्टों के भरोसे पर।
नृप! राज्य छोड़ निशिचत हुए, फिर सुख पा सकते हो क्यों कर ?

पण्डितों के लक्षण (विदुर उवाच)

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥16॥

भावार्थ : निज शक्ति का है ज्ञान जिसे, स्वात्मा को पहचानता है।
हानि लाभ अपमान मान,सुख दुख को सहे, धर्म पालता है॥
विषय जगत के जिसे कभी भी, कहीं खींच नहीं पाते हैं॥
ऐसे व्यक्ति ही नृप! सुनो, सच्चे पण्डित कहलाते हैं॥

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डितलक्षणम् ॥17॥

भावार्थ : यज्ञ दानादि शुभ कर्म करे,श्रुति आत्म परमात्म गहे पुनर्जन्म।
चोरी जारी मद्य हिंसा मांस, न गहे ये पण्डित के लक्षण ॥

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीः स्तम्भो मान्यमानिता।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥18॥

भावार्थ : अहम् रुठना क्रोध खुशी, लज्जा धृष्ठता से हटा हुआ।
जिस मानव में ये छः गुण हों, वह पण्डित होता सधा हुआ॥

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥19॥

भावार्थ : कब क्या करना न भावी मन्त्र, न अगला कर्म जताता है।
काज सरे पर भेद खुले, नर वह पण्डित कहलाता है॥

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥20॥

भावार्थ : सर्दी गर्मी भय हानि लाभ, जिस को नहीं विषय सताता है।
गरीबी अमीरी जानता है, वह ही पण्डित कहलाता है॥

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते ॥21॥

भावार्थ : जो व्यक्ति जागतिक बुद्धि को, धर्म–अर्थानुकूल चलाता है।
तज विषय वासना धर्म करे, वह ही पण्डित कहलाता है॥

यथा शक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः ॥22॥

भावार्थ : नर यथा शक्ति जो काम करे, सामर्थ्य से करना चाहता है।
तिरस्कृत करे न समझे तुच्छ, वह बुद्धिमान कहलाता है॥

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति
विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्।
नासम्पृष्टो व्युपयुंक्ते परार्थे
तत्प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ॥23॥

भावार्थ : फौरन समझे सबकी पीड़ा, धैर्य–ध्यान से सुनता है।
हो–विषय मुक्त, रोड़ा न कहीं, जग में वह पण्डित मनता है॥

नाप्राप्यमभिवाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ॥24॥

भावार्थ : अप्राप्त न पाने की इच्छा, न नष्ट पै शोक मनाता है।
रहे घोर विपद में धैर्यवान, जग उसको बुद्ध बताता है॥

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ॥25॥

भावार्थ : शक्ति को समझ कर्त्तव्य जान, नहीं कर्म अधर में तजता है।
कर्मों में व्यस्त पूर्ण जितेन्द्रय, ज्ञानी के पद पर सजता है॥

आर्य कर्मणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितं च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ ॥26॥

भावार्थ : शुभ वैभववान हित्कारी काम, अच्छे से अच्छा करता है।
ईर्ष्या न करे न दोष मढ़े, वह पण्डित सदा उचरता है॥

न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते।
गाङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ॥27॥

भावार्थ : मान से खुश न खुश यश से, अपमान से कष्ट न मानता है।
गम्भीर सिन्धु सा, क्षोभ न हो, जग उसको पण्डित मानता है

तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ॥28॥

भावार्थ : जो जग की समझे सच्चाई, अति कुशल कर्म को रचता है।
सिद्धि के यत्न सब जानता है, पण्डित की उपाधि रखता है॥

प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान्।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥29॥

भावार्थ : मेधावी सूझमय कथा कुशल, धारा प्रवाह से बोलता है।
फट उत्तर, झट शास्त्र बोल, खोले पण्डित बे तोल का है

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥30॥

भावार्थ : बुद्धिगम्य हो शास्त्र ज्ञान, सत्य धर्म अर्थ अनुसार चले।
तजता मर्याद न ऋषियों की, उस को पण्डित संसार कहे॥

अर्थं महान्तमासाद्य विद्यामैश्वर्यमेव वा।
विचरत्यसमुन्नद्धो यः स पण्डित उच्यते ॥31॥

भावार्थ : अति धन वैभव पद विद्याराज, जो पाके नहीं गर्भाता है।
सन्तोष छोड़ता कभी नहीं, वह ही पण्डित कहलाता है॥

मूर्खों के लक्षण

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्यूच्यते बुधैः ॥32॥

भावार्थ : बिन शास्त्र ज्ञान भी अहम् करें, धनशून्य मनोरथ बहुत बड़ा।
बिन कर्म धनी बनना चाहे, बुद्ध कहते उसको मूर्ख महा॥

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥33॥

भावार्थ : जो छोड़ के अपने कार्य को, रिपुओं के पीछे दौड़ता है।
मित्रों के साथ भी दम्भ करे, वह मूर्ख, मूर्ख बे जोड़ का है॥

अकामान्कामयति यः कामयानान्परित्यजेत्।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ॥34॥

भावार्थ : जो प्रीत करे अनचाहों से, चेहतों से ईर्ष्या करता है।
योग्यों को तजे, बलियों से द्वेष, दुनिया में मूर्ख उचरता है॥

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ॥35॥

भावार्थ : अयोग्य मित्र पात्रों को, अपात्र को योग्य बताता है।
मित्रों से घात, करे कर्म बुरे, मानव वह मूढ़ कहाता है॥

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ॥36॥

भावार्थ : जो भावी काम सर्वत्र कहे, सब को सन्देह से नापता है।
अति योग्य काम में देर करे, नृप! उसे मूढ़ जग मानता है॥

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति।
सुहृन्मित्रं न लभते तमाहुर्मूढचेतसम् ॥37॥

भावार्थः जो राष्ट्र भक्त मित्र-पित्रों की, श्रद्धा से न भक्ति करते हैं।
अतिथि विज्ञों का मान नहीं, न राष्ट्र की वृद्धि करते हैं॥
शुद्ध मना स्नेही व्यक्ति को, नहीं अपना मित्र बनाते हैं।
नही ईश भक्ति उपकारमय यज्ञ, निश्चय ही मूढ़ कहाते हैं॥

विशेष : श्राद्ध का अर्थ है, श्रद्धा पूर्वक माता पिता आदि का सत्कार 'पितृ' शब्द का अर्थ बहुत व्यापक है। पितृ शब्द माता-पिता के अतिरिक्त साधु सन्त पूरोहित गुरु नगर और देश रक्षक के लिए भी प्रयुक्त होता है। दैवत का अर्थ है देवता। देवता दो प्रकार के होते है चेतन और जड़ चेतन देव हैं -ब्राह्मण, सन्यासी, आचार्य, अतिथि आदि-आदि और देवों का देव है-महादेव (परम पिता परमात्मा)। जड़ देव हैं-अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी आदि। जो इन सब से लाभ उठाता हुआ इन्हें बदले में कुछ नहीं देता, वास्तव में वे ही मूर्ख हैं। — वह मूर्ख ही है

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥38॥

भावार्थ : पर घर व सभा में बिना कहे, जो जाता अतिशः बोलता है।
विश्वास करे गद्दारों पर, वह मूर्ख बहुत बेतोल का है॥

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः॥39॥

भावार्थ : स्वयं ही दुष्टाचरण करे, आरोप और पर धरता है।
बलहीन हुआ भी क्रोध करे, जग में वह मूढ़ उचरता है॥

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम्।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते॥40॥

भावार्थ : धर्म और अर्थ से हो के अलग, बिन पुरुषार्थ ऐश्वर्य चाहता है।
बिन ताकत आंके कर्म करे, वह मूर्ख कहाया जाता है॥

अशिष्यं शास्ति यो राजन् यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥41॥

भावार्थ : अपात्र को शिक्षा, दीन हीन, और निन्दनीयों का संग करें।
कंजूस सूम का आश्रय लें, उनको ही मूढ सब विज्ञ कहें।

संख्या द्वारा ज्ञान

एकः सम्पन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥42॥

भावार्थ : निज सेवक गण को बांटे बिना, स्वादिष्ट जो भोजन करता है।
पहने इकला ही श्रेष्ठ वस्त्र, निर्दयी क्रूर उचरता है॥

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते॥43॥

भावार्थ : पापों से कमाये धन इकला, पर उसके बहुत उपभोक्ता हैं।
उपभोगी दोष से छुट जाते, कर्ता ही पाप को भोगता है॥
धन पाप के द्वारा पाया हुआ, सारा परिवार खपा देता।
इकले राजा का किया पाप, पूरा ही राष्ट्र डुबा देता॥

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम् ॥44॥

भावार्थ : धनुर्धर द्वारा जो छुटा बाण, किसी एक को मारे न मारे।
विद्वान का तीखा बुद्धि-बाण, पर सारे राष्ट्र को संहारे॥

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव॥45॥

इक धी द्वारा दो का निश्चय, कि कर्त्तव्य अकर्त्तव्य पहचाने।
उदासीन, रिपु, मित्र तीन को, सामादि चार से कब्जाले॥
भेद दान से उदासीनको, मीठे पन से नित मित्रों को।
और चारों ढंगों से वश करले, अपने सारे ही शत्रुओं को॥
फिर पांच जीत कर ज्ञानेन्द्रियां, शत्रु पै आक्रमण अनुशासन।
मेल लड़ाई द्वैध आलम्बन, जानें छहों को मय लक्षण॥
आखेट व मद्य जारी जुआ, दण्ड बिन दोष कड़ा भाषण।
अधम काम में धन का खर्च, ये सातों तज हो सुखराजन्॥

अध्यात्मिक भावार्थ

उपकार मयी धी के द्वारा, जीवात्म परमात्म को पहचाने।
मोह काम क्रोध को जीतजीत, शम दम उपरम और श्रद्धा से॥

वश करके फिर पंच ज्ञानेद्रियां, शम, दम उपरति तितिक्षाको।
श्रद्धा, और समाधान छहों को, जाने बढ़ाये निष्ठा को॥
आखेट व मद्य जारी जुआ, दण्ड बिन दोष कड़ा भाषण।
अधम काम में धन का खर्च, ये सात तजें तो सुख हरदम॥

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च बध्यते।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ॥46॥

भावार्थ : विषपान किये पर एक मरे, शस्त्र भी एक को मारता है।
छिपा हुआ सब भेद खुला, तो, सारा ही राष्ट्र संहारता है॥

विशेष : जो हाथ में रखकर ही चलाया जाय, वह शस्त्र कहलाता है जैसे भाला तलवार आदि। जो फेंक कर मारा जाय वह शस्त्र कहलाता है जैसे तीर बन्दूक तोप बम्ब आदि।

एकः स्वादु न भुञ्जीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ॥47॥

भावार्थ : स्वादु भोजन इकला न करे, इकला न करे वित्त का चिन्तन।
निकले न यात्रा पर इकला, न जगे सभी जब निद्रा मग्न।।

एकमेवद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥48॥

भावार्थ : सिन्धु से पार उतरने को, बस एक ही साधन नौका है।
यों स्वर्ग का साधन ब्रह्म ज्ञान, नृप एक ही जग में होता है॥

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥49॥

भावार्थ : बस क्षमा शील का एक दोष, अन्यत्र नहीं देखा जाता।
असमर्थ लोग उसको समझें, इस क्षमा के कारण दुर्बलता।।

विशेष : इस श्लोक के पश्चात् तीन प्रक्षिप्त श्लोक मिलते है :-

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणोह्यशक्तानां शक्तानां भूषनं क्षमा॥1॥
क्षमा वशीकृतिलोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ॥2॥

अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ॥3॥

भावार्थ : कहना न छिमा को कभी दोष, यह बड़े गजब की शक्ति है
निबलों का होती यह गुण है, सबलों में भूषण लगती है॥
इक छिमा का गुण केवल जग में, जो वश में सभी को कर सकता।
भला छिमा से क्या न मिले ? नित छिमा शस्त्र करता रक्षा॥
ज्यों तिनके रहित स्थानों पर, नित अग्नि शान्त पड़ जाता है।
यों छिमावान से किया बैर, जड़ से ही शमन हो जाता है॥

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा॥50॥

भावार्थ : इक धर्म से ही बस मोक्ष मिले, इक छिमा सिर्फ शान्ति देता।
इक विद्या से सन्तोष मिले, अहिंसा ही सिर्फ सुख को देता॥

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ॥51॥

भावार्थ : राजा शत्रु से युद्ध न करे, भ्रमण न करे सन्यासी जो।
भू उन्हें निगलती ऐसे ही, ज्यों सर्प निगलता मूसी को॥

विशेष : राजा शत्रु से युद्ध नहीं करेगा, तो अपने राज्य से हाथ धो बैठेगा, और यदि सन्यासी प्रवास न करेगा, तो न उसकी विद्या बढ़ेगी और न उसका यश ही फैलेगा।

द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिंल्लोके विरोचते।
अब्रुवन्परुषं किञ्चिदसतोऽनर्चयंस्तथा ॥52॥

भावार्थ : तज कड़ा वचन दुष्टों का मान, जो दो बातें अपनाता है।
इस तरह कर्म को करता हुआ, वह यश गौरव को पाता है॥

विशेष : यहां धृतराष्ट्र को कहा जा रहा है कि युधिष्ठिर किसी के प्रति कठोर वचन नहीं बोलता, अतः उसका यश फैल रहा है। आप शकुनि आदि दुष्टों का आदर कर रहे हैं इस कारण आप की अपकीर्ति हो रही है।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ।
स्त्रियः कामितकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः ॥53॥

भावार्थ : करें अन्य के यकीं पर कर्म द्वै, इक भजता अन्य से पूजित को।
चाहे अन्य के चाहे नर को, दो नम्बर पर वे स्त्रियां हो॥

विशेष : यहां धृतराष्ट्र को उद्‌बोधन दिया जा रहा है कि तुम कर्ण का आदर सम्मान इस लिए कर रहे हो, क्योंकि आप का पुत्र दुर्योधन उसकी पूजा कर रहा है।

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥54॥

भावार्थ : देह के दो कांटे कष्ट प्रद, इक होके दीन भी राजस्वप्न,
दूजा अत्यन्त कमजोर हुआ, करता है क्रोध सुन ले राजन!

विशेष : दुर्योधन असमर्थ होकर भी, पाण्डवों पर क्रोध कर रहा है। यह ध्वनि श्लोक के चतुर्थ चरण से निकल रहीं है।

द्वामिमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवाँश्चैव भिक्षुकः ॥55॥

भावार्थ : दोनों चलते मर्याद विरुद्ध, नहीं मनुष्य ये शोभा पाते हैं।
उदासीन गृहस्थ, जग बन्धा साध, निन्दनीय कहाये जाते हैं॥

विशेष : यहां श्लोक के तीसरे चरण में विदुर जी ने धृतराष्ट्र की ओर संकेत किया है, कि तुम कौरव- पाण्डवों के कलह निवारण में उदासीन हो गृहस्थ चलाने के लिए गृहस्थ को आजीविका- उपार्जन का कोई कार्य अवश्य करना चाहिये। सन्यासी को प्रपञ्च में न फंस कर लोक कल्याण और आत्म चिन्तन में तत्पर रहना चाहिये।

द्वामिवौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥56॥

भावार्थ : दो तरह के मानव नृप! सुनो, अत्यन्त आनंदित रहते हैं
हो के समर्थ भी क्षमाशील, अति दरिद्र दान जो करते हैं॥

विशेष : इस श्लोक से यह ध्वनि निकल रही है कि, पाण्डव शक्शिाली होकर भी क्षमाशील है। अतः उनकी विजय निश्चित है।

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥57॥

भावार्थ : न्यायों से मिले धन के राजन्। वस दो दुरोपयोग हुआ करते।
सत्पात्र को देते कुछ भी नहीं, दुष्पात्र को दान दिया करते॥

द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥58॥

भावार्थ : इन दो के गले में शिला बान्ध, सिन्धु में डुबो कर गोता दे।
हो के धनी कंजूस रहे, अति निर्धन भी कामचोर रहे॥

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥59॥

भावार्थ : रत हुआ योग में सन्यासी, जो योद्धा वीर गति पाते हैं।
व्रह्माण्ड भेद कर ये दोनों, निश्चिन्त स्वर्ग में जाते हैं॥

त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः ॥60॥

भावार्थ : वेद के द्वारा तीन तरह के, कर्म सिद्धि उपाय कहे जाते।
इन उत्तम मध्यम अधम से ही, नर सभी कर्म सिद्धि पाते॥

विशेष : त्रय+उपाया=त्रयोपाय, यह आर्ष सन्धि है।
युद्ध द्वारा किसी को वश करना अधम उपाय है। भेद और दान से वश में करना माध्यम तथा साम से वश में करना उत्तम उपाय है।

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः।
नियोजयेद्यथावत्ताँस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥61॥

भावार्थ : नर तीनों तरह के होते नृप, बस उत्तम, अधम और मध्यम।
करें यथा योग्य ही नियुक्त उन्हें, हो जैसी योग्यता वैसा कर्म॥

विशेष : इस श्लोक में विदुर धृतराष्ट्र को संकेत कर रहें है कि तुमनें कर्ण आदि अयोग्यों को उत्तम कार्य पर नियुक्त किया हुआ है, जो धर्म नीति के सर्वथा विरुद्ध है।

त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥62॥

भावार्थ : पत्नि दास और पुत्र तीन ये, जग में धन हीन कहाते हैं।
ये जो भी कमाते हैं इनके, स्वामी स्वामी हो जाते हैं॥

विशेष : राजकर्मचारी जो धन प्राप्त करता है, वह राज्य का होता है, अतः सेवक को अधन कहा गया है, पत्नि का धन पति से और पुत्र का पिता से विभक्त नहीं होता, इस कारण ये दोनों भी अधन हैं।

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥63॥

भावार्थ : धन हरना बुरे उपायों से, व्यभिचार दूसरी नारियों से।
और मित्र त्याग वंचित करते, मानव को धर्म, यश आयुओं से॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥64॥

भावार्थ : काम क्रोध और लोभ तीन ये, आत्म पतन कर दुख देते।
इस लिये सभी धीमान विज्ञ, नित इनसे बच करके रहते॥

वरप्रदानं राज्यं च पुत्रजन्म च भारत।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात्त्रीणि चैकं च तत्समम्॥65॥

भावार्थ : वस्तु मनचाही किसी को दे, पाना राज और पुत्र जन्म।
वैरी को करना दुख से दूर, इक कर्म ही पूर्व तीनों के सम॥

भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।
त्रीनेताञ्शरणं प्राप्तान्विषमेऽपि न सन्त्यजेत्॥66॥

भावार्थ : आज का सेवक, पूर्व भक्त, और शरण में जो आ जाता है।
साथ न छोड़े इनका कभी, यह धर्मशास्त्र बतलाता है॥

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन
वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात्।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यान्
न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च ॥67॥

भावार्थ : मह नृपों को भी तजने योग्य, हैं चार कर्म बुद्ध नृप गुनें।
मूढ़, सुस्त, भावुक भाटों, से कभी भूल, मन्त्रणा न करें॥

चत्वारि ते तात गृहे बसन्तु
श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नःकुलीनः
सखा दरिद्रो भगिनी चानपत्या ॥68॥

भावार्थ : धन हीन मित्र, दुखी कुलीन वृद्ध, सन्तान हीन हो कोई बहन।
गृहस्थी धर्म मय वैभव भरे, इस घर में तुम्हारे लेवें शरण॥

विशेष : कुटुम्ब का वृद्ध घर में रहेगा, तो कुल धर्म, कुल मर्यादा का उपदेश करता रहेगा, संकट ग्रस्त कुलीन घर में रहेगा तो बालकों को आचार की शिक्षा देता रहेगा। आश्रय दाता की वृद्धि की कामना करेगा। मित्र हित की बात कहेगा। निःसन्तान बहिन भाई के बच्चों से प्रेम करेगी और घर की रक्षा करेगी।

चत्वार्याह महाराज सद्यस्कानि बृहस्पतिः।
पृच्छते त्रिदशेन्द्राय तानीमानि निबोध मे॥69॥
देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम्।
विनयं कृतविद्यानां विनाशं पापकर्मणाम् ॥70॥

भावार्थ : बृहस्पति देव ने इन्द्र के प्रश्न पर, जो कही बात वह मुझ से सुन।
यह चमत्कार से भरी हुयी, फल देती है जो तत्क्षण॥
गुणियों की विनम्रता, देव संकल्प, पापी संहार धीमान असर।
तत्काल ये फल को देते हैं, कल्याण करो इन पर चल कर॥

चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ॥71॥

भावार्थ : शास्त्र विधि से किया हवन, शास्त्र मुताबिक हुआ अध्ययन।
शास्त्रों से किया गया यज्ञ मौन, ये चारों अभय के हैं कारण॥
लेकिन इनको गर दम्भ से करें तो, भय इन से ही बन जाता।
बस शास्त्र विधि से किया कर्म, होता उत्तम फल का दाता॥

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः।
पिता माताऽग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥72॥

भावार्थ : मांत पिता और अग्निहोत्र, गुरु आत्म पांच अग्नियों की।
नृप! भक्ति अवश्य किया करें, श्रद्धा व प्रेम से नित इन की॥

विशेष : आत्मा शब्द से आत्मा अपना आपा, परमात्मा और अतिथि आदि का ग्रहण भी हो सकता है। अग्नि से परमात्मा और अग्निहोत्र दोनों का ग्रहण हो सकता है।

पञ्चैव पूजयँल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम्।
देवान्पितॄन्मनुष्याँश्च भिक्षूनतिथिपञ्चमान् ॥73॥

भावार्थ : पित्र–देव अतिथि आश्रय हीन, अरु वृद्ध अपाहिज पाप रुग्ण।
जो भी इनका सत्कार करे, यश वैभव से होता सम्पन्न॥

पञ्च त्वानुगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ॥74॥

भावार्थ : बैरी मित्र और उदासीन ये, आश्रय दाता आश्रय पाता।
सब रहेंगे पांचो साथ साथ, कहीं जाओ चले तुम हे भ्राता!

पञ्चेन्द्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम्।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥75॥

भावार्थ : पंच ज्ञानेन्द्रियों में किसी में भी, गर अवगुण उत्पन्न हो जावे।
उस नर की बुद्धि नष्ट हों यों, जल मरसक से ज्यों रिस जावे॥

विशेष : इस विषय से मिलता जुलता श्लोक 2/99 में है।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ॥76॥

भावार्थ : नर जो भी चाहते सुख वैभव, त्यागें गुस्सा निद्रा तन्द्रा।
डर पिछड़ेपन प्रमादों से, पिण्ड अपना छुड़ालें सदा सदा॥

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः ॥77॥

भावार्थ : धैर्य दान सत्य वचन पुरुषार्थ, करना छिमा चुगली से विलग।
तुम छहों गुणों से कभी नृप! हरगिज ना होना कभी अलग॥

षडिमान् पुरुषो जह्याद् भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्वजम् ॥78॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥79॥

भावार्थ : गुरु शिक्षा न उपदेश करे, और करे न राजा रक्षा जो।
व्यभिचारिणी पत्नि कटु कहे, गांव रहना चाहे ग्वाला जो॥
नाई जो बन की इच्छा करे, स्वाध्याय न करता ऋत्विक जो।
इन छः के छः को छोड़ दें यों, ज्यों सिंधु में टूटी नौका को॥

विशेष : अनेक बार च का उपयोग पाद पूर्ति के लिये हुआ है। अप्रियवादिनी का अर्थ है व्यभिचारिणी! अप्रिय वादो व्यभिचारो जो पर पुरुषों के साथ व्यभिचार करे। और रोकने पर पति को खरी–खोटी (जली–कटी) सुनाये, ऐसी स्त्रियाँ अप्रिय वादिनी हैं।

अर्थोगमो नित्यमरोगिता च
प्रिया च भार्या प्रियावादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥80॥

भावार्थ : हो काया निरोगी, धन घर में, मृदु भाषिणी पत्नि प्रियतम हो।
विद्या धन मय, सुत आज्ञा में, ये छः हों जहां, सुख वर्षा हो॥

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः
सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः
षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥81॥

भावार्थ : कर्ज न होना स्वास्थ्य ठीक, नित् साधु संग निर्भय जीवन।
हो जीविका साधन घर में वास, नृप! छः हैं ये सुख के साधन॥

विशेष : अन्य संस्करणों में यह श्लोक 89 वां है। विषय की दृष्टि से इसे उचित स्थान पर रख दिया है। निरोगता दोनों में समान है श्लोक स. 80 में प्रियवादिनी में विशिष्ट भेद प्रतीत नहीं होता, अतः श्लोक असंगत सा लगता है। पूना संस्करण में इन दोनों को प्रक्षिप्त माना है।

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ॥82॥

भावार्थ : मानव के चित में बसे हुए, मोह शोक क्रोध मद का चसका।
और काम मान इन छः को बुद्ध, जितेन्द्रिय जो वश में करता॥
पापों से युक्त हो सकता नहीं, न उस को विषय दबा सक्ता।
फिर कष्टों और अनर्थो में, धीमान वह कैसे आ सकता॥

विशेष : श्लोक में निर्दिष्ट छह से तात्पर्य नील कण्ठ के अनुसार काम क्रोध, शोक, मोह, मद और मान हैं। मन सहित पांच ज्ञानेन्द्रियां भी छः हो सकते है। काम क्रोध लोभ मद और मात्सर्य भी छः हो सकते हैं।

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।
चोराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः ॥83॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पण्डिताः ॥84॥

भावार्थ : इन छः के आश्रय में ही नृप! छः जीवन यापन करते हैं।
गर मिले कहीं, न ये छह तो, छह के छह भूखे मरते हैं॥
प्रमादी चोर को आश्रय दे, वैद्यों को रुग्ण जिलाता हैं।
वेश्या का आश्रय कामी पुरुष, राजा को युद्ध बढ़ाता है॥
याजक, ऋत्विज यजमानों पर, विद्वान अपढ़ पर है निर्भर।
जव छः ये आश्रय मिले नही, सब मरें भूख से अपने घर॥

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसङ्गतिः ॥85॥

भावार्थ : नित गऊएं चाकरी खेती कर्म, विद्या भार्या नीच का संग।
ये छः के छः हो जाते नष्ट, यदि ध्यान जरा हो जाय अलग॥

विशेष : भार्या शब्द यहां सामान्य स्त्रियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। नीचों की मित्रता तो होती ही अस्थायी है। निरन्तर अभ्यास न करने से विद्या नष्ट हो जाती है। ऐसी ही स्थिति गौ खेती आदि की भी है।

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम् ॥86॥
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकान्तारा आतुराश्च चिकित्सकम्॥87॥

भावार्थ : बीमार स्वस्थ बन वैद्यों को, कृत कार्य मनुष्य सहायों को।
नर काम तृप्त कर नारी को, सरिता तर करके नावों को॥
शिष्य विद्या पढ़कर आचार्य को, और ब्याहा पुत्र महतारी को।
नित छः व्यक्ति ये हीन लखें, हर अपने पूर्व उपकारी को॥

ईर्ष्युर्घृणी न सन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः॥88॥

भावार्थ : ईर्ष्या घृणा जो मनुष्य करे, अन्यों के आश्रय पर रहता।
नित शंका क्रोध किया करता, वह सदा सदा ही दुख सहता॥

सप्त दोषाः सदा राज्ञा ह्यतव्या व्यसनोदयाः।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः॥89॥
स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम्।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च॥90॥

भावार्थ : जुआ खेलना, तिय में चित्त, मद्यपान शिकार कटु भाषण।
कड़ी सज़ा, धन गलत खर्च, सत्ता संकट करते उत्पन्न॥
इस लिये दृढ़तर नृप को भी, ये सात दोष तजने चाहिएं।
वरना कर देते नष्ट भ्रष्ट, नित कुफल याद रखने चाहिएं॥

अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते॥91॥
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणाँश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति॥92॥

नैनान् स्मृति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान्दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्येद् बुद्ध्वा विसर्जयेत्॥93॥

भावार्थ : चिन्ह आठ ये नरं को नष्ट करें, मैं ब्यौरेवार तुम्हें कहता।
विद्वान से मन में द्वेष करे, और उनका विरोध किया करता॥
धन उन का हरे, हत्या करदे, और उनके मान से है जलता।
निन्दा का उनकी यत्न करे, तारीफ न उनकी सुन सकता॥
उत्सव में उन्हें बुलाता नही, अहम् के वश न ज्ञान सुने।
कुछ मांगे उनको हीन लखे, वह अपने आप को नष्ट करे॥

अष्टाविमानि हर्षस्यः नवनीतानि भारत।
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि॥94॥
समागमश्च सखिभिर्महाँश्चैव धनागमः।
पुत्रेण च परिष्वङ्गः सन्निपातश्च मैथुने॥95॥
समये च प्रियालापः स्वयूथ्येषु समुन्नतिः।
अभिप्रेतस्य लाभश्च पूजा च जनसंसदि॥96॥

भावार्थ : बहुत बड़ा धन, मित्र का मिलना, सुत का आलिंगन होवे अगर।
मैथुन में निवृत्ति साथ-साथ, प्रिय से बात होती मिलकर॥
जन में पूजा, हो इच्छा पूर्ण, अपना समाज हो बढ़चढ़कर।
लक्षण ये जहाँ भी मिल जाते, उल्लास भरे उस अवसर पर॥

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः॥97॥

भावार्थ : त्रिखम्भ वाले नव द्वारों के, पंच साक्षियों के इस देह घर को।
नर भली तरह जो जानता है, सब ज्ञानी श्रेष्ठ कहते उसको॥

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान्।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः॥98॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश।
तस्मादेतेषु भावेषु न प्रसज्जेत पण्डितः॥99॥
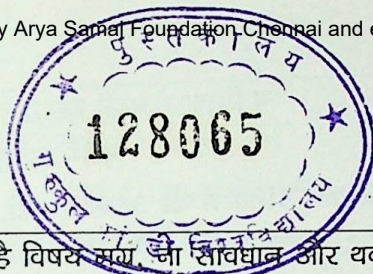
भावार्थ : मदिरा में मस्त है विषय मग्न, जो सावधान और थका हुआ।
भूखा है क्रोधी जल्द बाज, हो लोभ युक्त और डरा हुआ॥
और पागल ये दस धर्म बैरी, हे भ्रात! रहो इन से बच कर।
मिलता है धर्म उस कोही सदा, जो चलते हैं इन से हटकर॥

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
पुत्रार्थमसुरेन्द्रेण गीतं चैव सुधन्वना॥ 100॥

भावार्थ : इतिहास पूर्व, इस से सम्बद्ध, अब सुनो तुम्हें मैं रहा बता।
दैत्य गुरु प्रहलाद ने सुत को, सुधन्वा के साथ उपदेश किया॥

विशेष : आगे उपदेश तो है, परन्तु इतिहास नही है, अतः यह श्लोक प्रक्षिप्त है।

यः काममन्यू प्रजहाति राजा
पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च।
विशेषविच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी
तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम्॥ 101॥

भावार्थ : तजता है नृप जो काम क्रोध, उच्चनीच, शास्त्र को जानता है।
शीघ्रकारी, सुपात्र को दान करे, जग उसे प्रमाण मानता है॥

विशेष : (पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च) पात्र को दान देना धन की प्रतिष्ठा है। मन्यु और क्रोध में अन्तर है। होश युक्त क्रोध का नाम मन्यु है, और यह गुण है, सुध बुध खोकर आपे से बाहर हो जाना क्रोध है, जो दुर्गुण है।

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्
विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च
तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा॥ 102॥

भावार्थ : जो दोष जान दोषी को दण्डे, विश्वास दिलाना जानता है।
सही दण्ड मात्रा छिमा ज्ञान, धनवान पूर्ण वह बनता है॥

सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चिद्
युक्तो रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम्।

न विग्रहं रोचयते वलस्थैः
काले च यो विक्रमते स धीरः ॥103॥

भावार्थ : करें निबलों का अपमान नहीं, रिपु से वरते धी युक्त होकर।
झगड़ा न करे बलियों से कभी, है धीर, भिड़े वक्त आने पर।

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचि-
दुद्योगमन्विच्छति चाप्रमत्तः।
दुःखं च काले सहते महात्मा
धुरन्धरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥104॥

भावार्थ : होता न दुखी जो विपद में भी, प्रमाद को छेड़ करे उद्यम।
और समय पड़े पर दुःख भी सहे, धुरन्धर है, बैरियों पर भरकम॥

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः
पापैः सन्धिं परदाराभिमर्शम्।
दम्भं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं
न सेवते यः स सुखी सदैव॥105॥

भावार्थ : बिन काम नहीं प्रवास करे, दम्भ चोरी चुगली नहीं करता।
पर तिया गमन ना पापी मेल, मदिरा न पिये, वह सुख भरता॥

न संरम्भेणारभते त्रिवर्ग-
माकारितः शंसति तत्त्वमेव।
न मात्रार्थे रोचयते विवादं
नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः ॥106॥

भावार्थ : बुद्ध भावुक हो धर्म अर्थ काम, त्रिविषयक कार्य नहीं करता।
न थोड़ी बात पर झगड़ा करे, पूछे जाने पर सत्य कहता॥
सम उचित मान न मिलने पर, नहीं कभी क्रोध में आता है।
वह पुरुष जगत में निश्चय ही, धीमान कहाया जाता है॥

न योऽभयसूयत्यनुकम्पते च
न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति।

नात्याह किञ्चित्क्षमते विवादं
सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम् ॥ 107 ॥

भावार्थ : करता जो ईर्ष्या द्वेष नहीं, निम्न होकर रोध नहीं करता।
बढ़ चढ़ न कहे न वाद करे, दया करता, जमानत न भरता॥
इस तरह का मानव जग में सदा, सिद्ध होकर इज्जत पाता है।
कहीं उस का हो अवरोध नहीं, सब जगह वह पूजा जाता है॥

यो. नोद्धतं कुरुते जातु वेषं
न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्च्छितः कटुकान्याह कञ्चित्
प्रियं सदा तं कुरुते जनो हि॥ 108 ॥

भावार्थ : बेढंग उज्जड न भेष करे, न क्रोध करे व्याकुल होकर।
पराक्रम कहे नही कड़ुवा बोल, उस पुरुष को प्यार मिले घर घर॥

न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं
न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं
तमार्यशीलं परमाहुरार्याः॥ 109 ॥

भावार्थ : शान्त बैर भड़कावे नहीं, नहीं अहम् न हीन जताता हैं।
न धर्म तजे अति विपद में भी, नर वह अति श्रेष्ठ कहाता हैं॥

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं
चान्यस्य दुःखे भवति विषादी।
दत्त्वा न पश्चात्कुरुतेऽनुतापं
स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥ 110 ॥

भावार्थ : निज सुख में ही फूला न रहे, जो और के दुख में दुखी रहे।
कभी कर के दान पछताता नहीं, आर्य उस को सत्पुरुष कहें॥

देशाचारान् समयाञ्जातिधर्मान्
बुभूषते यः स परावरज्ञः।

स यत्र तत्राभिगतः सदैव
महाजनस्याधिपत्यं करोति ॥ 111 ॥

भावार्थ : विभिन्न देश के भाषा नियम, धर्माचरण जातियां जो जाने।
वह पुजता विवेकी सभी जगह, प्रजा उसको राजा माने॥

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं
राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं
यः प्रज्ञावान् वर्जयेत्स प्रधानः ॥ 112 ॥

भावार्थ : मोह पाखण्ड और मत्सर्य छेड़, नृप-जन से बैर तजकर चुगली।
दुष्टों से वाद न मत्त उन्मत्त, जग में होता वह श्रेष्ठ बली॥

दानं शौचं दैवतं मङ्गलानि
प्रायश्चित्तान् विविधाँल्लोकवादान्।
एतानि यः कुरुते नैत्यिकानि
तस्योत्थानं देवता राधयन्ति ॥ 113 ॥

भावार्थ : शुभकर्मानुष्ठान, यज्ञादि दान, करे स्वच्छता अन्दर बाहर की।
लोक व्यवहार प्रायश्चित भी करे, उन्नति देव करते उसकी॥

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः
समैः सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टाँश्च पुरो दधाति
विपश्चितस्तस्य नयाः सुनीताः ॥ 114 ॥

भावार्थ : समता वालों से मेल विवाह, बणज, बात न यारी हीनों से।
करे आगे गुणों में श्रेष्ठों को, गुर सीखे नीति के गुणियों से॥

मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो
मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः सं-
स्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनर्थाः ॥ 115 ॥

भावार्थ : निज आश्रितों को बांट बांट, जो स्वाल्प वस्त्र भोजन लेता।
करकाम अधिक कम सोता है, मांगन पै रिपु को भी देता॥
ऐसे व्यक्ति के पास कभी भी कष्ट नहीं आ पाता है।
घर-घर उसका सम्मान बढ़े, वह ऊँचा आसन पाता है॥

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य
नान्यं जना: कर्म जानन्ति किञ्चित्।
मन्त्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च
नाल्पोऽप्यस्य च्यवतेकश्चिदर्थ: ॥116॥

भावार्थ : कोई बिगड़ा सुधरा सोचा कर्म, जिस का न दूसरा जान सके।
बस कार्य सिद्धि के बाद में ही, मन्त्रणा व कर्म का पता लगे॥
जिस के भी गुप्त विचारों को, कोई भी जान न पाता है।
ऐसे व्यक्ति का कोई काम, न कभी बिगड़ने पाता है॥

य: सर्वभूतप्रशमे निविष्ट:
सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभाव:।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये
महामणिर्जात्य इव प्रसन्न: ॥117॥

भावार्थ : जीवों को शान्ति देता है, सत्यवादी पाक विचारों का।
बहु नम्र हुआ सत्कार में रत, चमके महफिल में सितारों सा॥

य आत्मनाऽपत्रपते भृशं नर:
स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत
अनन्ततेजा: सुमना: समाहित:
स तेजसा सूर्य इवावभासते ॥118॥

भावार्थ : बिन कहे जो अपनी भूल समझ, खुद लज्जित हो, विश्व गुरु बने।
तेजस्वी सुह्रदय बुद्धिमान, स्वतेज से भानु सा चमके॥

विशेष : प्रहलाद द्वारा अपने पुत्र के प्रति दिये गये उपदेश को सुनाकर विदुरजी धृतराष्ट्र को मर्म की बात कहते हैं।

वने जाताः शापदग्धस्य राज्ञः
पाण्डोः पुत्राः पञ्च पञ्चेन्द्रकल्पाः।
त्वयैव बाला वर्धिताः शिक्षिताश्च
तवादेशं पालयन्त्याम्बिकेय ॥119॥

भावार्थ : पाण्डु रोग से मृतक पाण्डू के, तेजस्वी पुत्र पञ्च इन्द्रों से।
हैं पाले तुम्हारे पढ़ाये हुए, हैं अब भी तुम्हारे कहने में॥

प्रदायैषामुचितं तात राज्यं
सुखी पुत्रैः सहितो मोदमानः।
न देवानां नापि च मानुषाणां
भविष्यसि त्वं तर्कणीयो नरेन्द्र ॥120॥

भावार्थ : पाण्डवों को उन का राज्य सौंप, निज सुतों सहित अति सुखी रहो।
बन कर न्यायिक नर देवों में, सर्व विश्वासी प्रशंस बनो॥

प्रथम अध्याय समाप्त्

अथ द्वितीय अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

जाग्रतो दह्यमानस्य यत्कार्यमनुपश्यसि।
तद् ब्रूहि त्वं हि नस्तात धर्मार्थकुशलो ह्यसि ॥1॥

भावार्थ : चिन्ता में जगते मुझ पीड़ित का, हे भ्रात अभिष्ट कर्त्तव्य कहो।
क्योंकि हम में तुम्हीं एक, बस राज धर्म के पण्डित हो॥

त्वं मां यथावद् विदुर प्रशाधि
प्रज्ञापूर्वं सर्वमजातशत्रोः।
यन्मन्यसे पथ्यमदीनसत्त्व
श्रेयस्करं ब्रूहि तद्वै कुरूणाम्॥2॥

भावार्थ : उदार मना हे विदुर! आप, पवित्र आत्मा बुद्ध विज्ञ हो।
कौरवों व युधिष्ठिर के हित में, जो शुभ समझो वह अवश्य कहो॥

पापाशङ्की पापमेवानुपश्यन्
पृच्छामि त्वां व्याकुलेनात्मनाऽहम्।
कवे तन्मे ब्रूहि सर्वं यथावन्
मनीषितं सर्वमजातशत्रोः॥3॥

भावार्थ : भावी कष्टों से दुःखी हूँ मैं, परिणाम पाप मय पाता हूँ।
क्या धर्मराज का अगला कदम ? यह तुमसे जानना चाहता हूँ॥

(विदुर उवाच)

शुभं वा यदि वा पापं द्वेष्यं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तद् ब्रूयाद्यस्य नेच्छेत्पराभवम्॥4॥
तस्माद् वक्ष्यामि ते राजन् हितं यत्स्यात्कुरून् प्रति।
वचः श्रेयस्करं धर्म्यं ब्रुवतस्तन्निबोध मे॥5॥

भावार्थ : पराजय हानि हे धृतराष्ट्र! जो चाहता नहीं किसी की है।
प्रिय-अप्रिय सब कहे साफ, यह सत्य न्याय की नीति है॥

अतः कौरवों के हित में ही, कल्याण की कहना चाहूंगा।
देकर के ध्यान समझो इसको, धर्मानुकूल तुम्हें समझाऊँगा॥

मिथ्योपेतानि कर्माणि सिद्ध्येयुर्यानि भारत।
अनुपायप्रयुक्तानि मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥6॥
तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः ॥7॥

भावार्थ : छल कपट के बल पर हुआ काम, निश्चय नुकसान पहुँचाता है।
मनको न धरो ऐसे कर्म में, भाई! निन्दा जो करवाता है॥
उत्तम उपाय से किया काम, फल न कोई दे सके अगर।
धीमान पुरुष को मन में कभी भी, कष्ट मानना नहीं श्रेष्यकर॥

विशेष : पाश्चात्यों का सिद्धान्त है- उत्तम उदेश्य की पूर्ति के लिये निकृत साधनों का प्रयोग भी उचित है, परन्तु वैदिक राजधर्म (राजनीति में कुशल विदुर जी का कहना- है कि हीन साधनों से प्राप्त होने वाली सिद्धि की इच्छा मत करो।

अनुबन्धानवेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत् ॥8॥
अनुबन्धं च सम्प्रेक्ष्य विपाकाँश्चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा॥9॥

भावार्थ : प्रयोजनार्थ कार्यो में प्रथम, सोचें समझे प्रयोजन को।
जल्दी बाजी में नहीं करे, बिन समझे किसी आयोजन को॥
धीर को चाहिये पहिले कर्म के , प्रयोजन फल का निर्णय करे।
उसके बाद ही किसी काम के, आरम्भ करने का निश्चय करे।

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते॥10॥
यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति॥11॥

भावार्थ : दुर्ग, राष्ट्रधर्म, लाभ हानि कोष, अनभिज्ञ है राज्य व्यवस्था से।
राज्य को शीघ्र छिन्न भिन्न करदे, वह योग्य नहीं इस आस्था के।
राष्ट्रीयता दुर्गादि विषयों में, धर्म अर्थ नीति नृप जानता जो।
निष्कण्टक शासन वह करता, कभी उसका शासन नष्ट न हो॥

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसाम्प्रतम्।
श्रियं ह्यविनयो हन्ति जरा रुपमिवोत्तमम्॥12॥

भावार्थ : अब तो मैं शासक बन ही गया, यह समझ गर्व में अनर्थ न कर।
अनीति करे सब वैभव नष्ट, ज्यों रुप को देता बुढ़ापा कर॥

भक्ष्योत्तमप्रतिछन्नं मत्स्यो बडिशमायसम्।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते॥13॥

भावार्थ : लोभी मीन आटे में छिपे, कांटे को निगल कर मर जाती।
क्योंकि इस के परिणाम को वह, न समझती है न लखपाती॥

विशेष : जो मनुष्य आरम्भ में सुखदायी, परन्तु अन्त में अनिष्ट कारी कर्म का विचार नहीं करता वह मछली की तरह मृत्यु का ग्रास बन जाता है।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत्।
हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता॥14॥

भावार्थ : निगलने योग्य हो पच भी सके, पचने के बाद हित लाती हो।
ऐसी वस्तु ही निगला करें, जो न नुकसान पंहुचाती हो॥

विशेष : विदुर जी संकेत से धृतराष्ट्र से कह रहे हैं कि कौरवों द्वारा पाण्डवों का जो राज्य छल से हड़पा गया है, वह पचेगा नहीं और पच भी गया तो उस का परिणाम अनिष्टकारी होगा। यदि कल्याण की इच्छा है, तो उनका राज्य उन्हें लौटा दो।

वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति॥15॥
यस्तु पक्वमुपादत्ते काले परिणतं फलम्।
फलाद्रसं स लभते बीजाच्चैव फलं पुनः॥16॥

भावार्थ : बिन पके फलों को तोड़ मूढ़, नहीं रस उन का ले पाता है।

रस से तो खाली रहता ही, बीजों को नष्ट कर जाता है॥
जो पके फलों को पाता है, वह उन का रस भी पाता है।
और पके फलों के बीजों से, वह बार-बार फल खाता है॥

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः।
तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया॥17॥

भावार्थ : भौंरा ज्यों पुष्प समूहों से, रस लेता उन्हें दुख दिये बिना।
प्रजा से यों कर संग्रह करे, नृप उसको पीड़ित किये बिना॥

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथाङ्गारकारकः॥18॥

भावार्थ : ज्यों बाग में माली फूल चुने, कोयले वाले सा ना खोता।
कर ले प्रजा से रक्षा युक्त, नृप वह श्रेष्टतम विज्ञ होता ॥

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः।
इति कर्माणि सञ्चिन्त्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा॥19॥

भावार्थ : क्या लाभ काम के करने में, नहीं करने में क्या हानि है।
कर्म विषय में सोच समझकर, करे काम वहीं ज्ञानी है॥

अनारभ्या भवन्त्यर्थाः केचिन्नित्यं तथागताः।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद्येषु निरर्थकः॥20॥
काँश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान्।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान्॥21॥

भावार्थ : बलवान शत्रु से युद्ध जैसे, न करने कर्म स्वभाव से हैं।
जिनसे पुरुषार्थ निफल होता, वे कर्म सदा ही त्याज्य हैं॥
हो सरल ढंगो से सिद्ध कर्म, जो बड़े ही मनोरथ वाला हो।
धीमान छोड़ता नहीं उसे, करता आरम्भ उतावला हो॥

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः॥22॥

ऋजुः पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः ॥23॥

भावार्थ : क्रोध व कृपा जिस भी नृप की, दोनों ही सदा निरर्थक हों।
यूं चाहे न प्रजा तनिक उसे, तिय चाहे न पति नपुंसक को॥
प्रजा को आँख से पीता सा, नृप दया दृष्टि से देखता है।
बैठे बैठे भी उसको शान्त, जन समूह प्रेम से भजता है॥

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारुहः।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित् ॥24॥

भावार्थ : राजा उस पेड़ की भांति हो, फल रहित फूल से लदा लदा।
हैं फलित तो कोई चढ़ न सके, फल कच्चा जंचे पक्का पक्का॥

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति लोकं यस्तं लोकोऽनुप्रसीदति ॥25॥

भावार्थ : जो दान दया और हित चिन्तन, सद् वचन मधुर इन चारों से।
नृप प्रजा को प्रसन्न रखता, जन करें सुखी जय नारों से॥

यस्मात् त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते ॥26॥

भावार्थ : ज्यों हिरण व्याघ्र से डरता है, यूं प्रजा नृप से डरे अगर।
वह नृप नष्ट हो जाता है, लोकों के राज को भी पाकर॥

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः ॥27॥

भावार्थ : पितृों से पाया राज्य भी तो, राजा की अनीति धोखों से।
ऐसे ही नष्ट हो जाता है, ज्यों मेघ हवा के झोकों से॥

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसम्पूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी ॥28॥

अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥29॥

भावार्थ : परम्परा को रखकर जो राजा, देवों का धर्म निभाता है।
राज्यैश्वर्य भोगता धनधान्य, दिन रात वह बढ़ता जाता है॥
जो धर्म त्याग आचार विरुद्ध, नित पाप के पथ पर जाता है।
जल चुके चाम सा उस का राज, दिन रात सिकुड़ता जाता है॥

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।
स एव यत्नः कर्त्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥30॥

भावार्थ : बैरी का राज्य मिटाने को, जो जो भी उपाय किये जायें।
साधन न लगाकर उधर सभी, निज राष्ट्र रक्षार्थ किये जायें॥

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥31॥

भावार्थ : राज्य को धर्म से प्राप्त करे, और धर्म साधकर रक्षा करे।
राज्यैश्वर्य प्राप्त कर धर्मयुक्त, सो एक एक को न तज दे॥

अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव काञ्चनम् ॥32॥
सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः।
सञ्चिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा ॥33॥

भावार्थ : विक्षिप्त बाल वाचाल असंगत-बोलने-वाले चारों से।
इन सब से सार को गृहण करे, ज्यों पाते स्वर्ण पाषाणों से॥
इक इक बाली ज्यों शिलाहारि, जहं तहं से जाकर बीनता है।
सद्ज्ञान वचन सत्कर्म सूक्त, बुद्ध जहाँ तहाँ से चुनता है॥

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः।
चारैः पश्यन्ति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥34॥

भावार्थ : गन्ध से करें गौ खाद्य-ज्ञान, विद्वान वेदके नेत्रों से।
गुप्तचरों के द्वारा देखें नृप, जन आम सिर्फ चर्म आंखों से॥

विशेष : यहां पाण्डवों के व्यवहार को गुप्तचारों द्वारा जानने का संकेत है।

भूयांसं लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा।
अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदन्त्यपि ॥35॥

भावार्थ : मुश्किल से दुहाती जो भी गऊ, वह बहुत बहुत दुख पाती है।
जो देती दूध सरलता से, उस पै न विपद यह आती है॥

विशेष : यहां विदुर जी संकेत से कह रहे हैं कि नृप! तुम्हारे पुत्र दुर्दुहा गऊ जैसे हैं।

यदतप्तं प्रणमति न तत्सन्तापयन्त्यपि।
यच्च स्वयं नतं दारु न तत्सन्नामयन्त्यपि ॥36॥
एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥37॥

भावार्थ : मुड़ जाती बिना तपाये जो, धातु वह नहीं तपाते हैं।
जो काष्ठ स्वयं है झुका हुआ, उसको भी नहीं झुकाते हैं॥

विशेष : यहां विदुरजी संकेत दे रहे है कि हे राजन्! यदि अपना कल्याण चाहते हो तो, निज पुत्रों से कहो कि वे अकड़ छोड़कर पाण्डवों के प्रति विनम्र हों।

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबान्धवाः।
पतयो बान्धवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबान्धवाः ॥38॥

भावार्थ : बादल पशुओं के रक्षक हैं, मन्त्री नृपों के सहाई हैं।
स्त्रियों के रक्षक उन के पति, चहूँ वेद विप्र के भाई हैं॥

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रुपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥39॥

भावार्थ : सद्व्यवहार धर्म की रक्षा करे, अभ्यास से विद्या धन बढ़ता।
शुद्धि से रुप की रक्षा हो, सद् चरित्र करे कुल की रक्षा॥

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचेलतः ॥40॥

भावार्थ : भली भांति सँभाले अन्न रहे, अश्व पुनः पुनः प्रशिक्षण से।
और गौ रक्षा चित्त लाइ प्यार, तिय अच्छे वस्त्र आभूषण से॥

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते ॥41॥

भावार्थ : उच्च कुल जन्मा नर चरित बिना, है जन्म के बल पर श्रेष्ठ नहीं।
निम्नों में जन्मा चरित्रवान, सब तरह से होता श्रेष्ठ सही॥

विशेष : यहां गुण–कर्म–स्वभाव के समक्ष जन्म की निष्कृष्टता प्रतिपादित की गई है। उच्च कुल में जन्म लेकर भी मनुष्य नीच और नीच जन्म लेकर मनुष्य उच्च हो सकता है।

य ईर्ष्युः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥42॥

भावार्थ : पराक्रम सौन्दर्य धन से अन्य के, बल–सुख सौभाग्य से जलता है।
कभी उस के दुःखों का अन्त नहीं, वह सदा कष्ट में पड़ता है॥

अकार्यकरणाद् भीतः कार्याणां च विवर्जनात्।
अकाले मन्त्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत्पिबेत् ॥43॥

भावार्थ : कर्त्तव्य हीनता गलत काम, मादक चीजों से डरता रहे।
कार्य सिद्धि से पूर्व कभी भी, गुप्त मन्त्र जाहिर ना करे॥

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः।
मदा एतेऽवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥44॥
ऐश्वर्यमदपापिष्ठाः मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यमदमत्तो हि नाऽपतित्वा विबुध्यते ॥45॥

भावार्थ : विद्या मद कुल मद धन बल, धी करते भ्रष्ट घमण्डियों की।
लेकिन ये ही सज्जनों के लिये, करें वर्षा सुख व शान्तियों की॥
मद्यादि का पीना भी मद है, पर वैभव मद निष्कृष्ट होता।
वैभव के मद में मत्त पुरुष, कभी पतित हुये बिन नहीं रहता॥

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः क्वचित्कार्ये कदाचन।
मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम् ॥46॥

भावार्थ : सज्जनों द्वारा कर्म सिद्धि हेतु, दुष्टों से अनुनय करने पर।
दुष्ट खुद को सन्त समझ लेते, निज को अति दुष्ट समझने पर॥

विशेष : श्लोक का आश्य यह है कि, दुष्टों से किसी कार्य के लिये प्रार्थना नहीं करनी चाहिये।

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो नत्वसन्तः सतां गतिः ॥47॥

भावार्थ : आश्रय है प्राणी मात्र का सन्त, सन्तों का सहारा भी सन्त ही।
दुष्टों का सहारा भी सन्त हैं, सन्त का न आश्रय असन्त कभी॥

विशेष : इस श्लोक से यह ध्वनित होता है, कि पाण्डव सन्त हैं, वे तुम्हारे उपकारक और सहायक बन सकते हैं, परन्तु तुम और तुम्हारे पुत्र उन के सहायक कभी नहीं बन सकते।

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥48॥
शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥49॥

भावार्थ: जीते सभा उच्च वस्त्र पहन, मिष्ठान स्वाद जीते ग्वाला।
मंजिल को सवारी जीतती है, सब को जीते शुद्ध भाव वाला॥
नर का शील ही होता खास, जीवन बिन शील निरर्थक है।
है नष्ट शील जिस का उसका , नहीं धन परिवार सार्थक है॥

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम।
तैलोत्तरं दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥50॥

भावार्थ: धनिकों के तामसी भोजन में, मांस प्रधान अधिकतर है।
मध्यम का खाना गौरस है, निर्धन का तेल खासकर है॥

सम्पन्नतरमेवान्नं दरिद्रा भुञ्जते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा॥51॥

भावार्थ: पुष्टकर खाते है, दरिद्र लोग, वां कड़ी भूख स्वादिष्टयपन।
यह स्वाद धनी को दुर्लभ है, मन्दाग्नि करती भूख खतम॥

प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि हि काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ॥52॥

भावार्थः दुनिया के धनाढ्य हे राजन्! शक्ति नहीं रखते खाने की।
वे दुखी अपच से, शक्ति निधन में, लकड़ी हज्म कर जाने की।

अवृत्तिर्भयमन्त्यानां मध्यानां मरणाद्भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमानात्परं भयम्॥53॥

भावार्थः अधमों को रोटी भवन वस्त्र, नहीं मिलने का ही भय होता।
मध्यम पुरुषों को मरने का, उत्तम को अनादर भय होता।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः।
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव॥54॥

भावार्थः गन्ध रुप रसादि विषय रमी, इन्द्रियों द्वारा जग पीड़ित है।
वश में न होकर ऐसे ज्यों, ग्रहों से नक्षत्र आतंकित हैं।

यो जितः पञ्चवर्गेण सहजेनात्म कर्षिणा।
आपदस्तस्य दर्धन्ते शुक्लपक्ष इवोडुराट्॥55॥

भावार्थः खिंच सहज मोहिनी इन्द्रियों से, पांचो का दास जो बन जाता।
उसकी विपद यों बढ़ती हैं, ज्यों शुक्ल-चन्द्र बढ़ता जाता॥

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते॥56॥

भावार्थः मन वश में करके जितेन्द्रिय जो, अपराधी दण्डे शुभ कर्म करे।
है धीर पुरुष वह वैभव युक्त, नित लक्ष्मी उस की चेरी रहे॥

रथः शरीरं पुरुषस्य राज-
न्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्
दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः॥57॥

भावार्थः आत्मा सारथी देह रथ है, ये घोड़े इन्द्रियाँ वश करके।
नर बुद्ध कुशल सावधान हुआ, जग पथ हथियाता है सुख से॥
रथवान धीर ज्यों घोड़ों को, बुद्धि से नियन्त्रित करने पर।
सुख शान्ति पूर्वक जाता पहुंच, अपने गन्तव्य लक्ष्य पर॥

विशेष : यजुर्वेद 34/6 और कठोपनिषद् 1/3/3/4 में भी शरीर को रथ और आत्मा को रथी आदि की उपमा दी गई है।

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ॥58॥

भावार्थ: बिन सधे निरंकुश घोड़े ज्यों, नष्ट करते मूढ सारथी को।
बस में न हुई इन्द्रियां यों, नष्ट करती मनुष्य की हस्ती को॥

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम् ॥59॥

भावार्थ: है मूढ इन्द्रियों का सेवक, छल कपट से प्राप्त द्रव्यों को।
विपरीत अर्थ में देखता है, सुख समझ बैठता कष्टों को॥

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते ॥60॥

भावार्थ: तज धर्म, धर्म अनुकूल अर्थ, जो ऐन्द्रिय दास बन जाता है।
धन, तिय, कुटुम्ब यश जीवन से, अतिशीघ्र अलग हो जाता है॥

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्या दैश्वर्याद भ्रश्यते हि सः ॥61॥

भावार्थ: धन सम्पत्तियों का तो स्वामी है, पर चाकर बना इन्द्रियों का।
इन्द्रियों का नाथ न बनने से, कर लेता नाश ऐश्वर्यों का॥

आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥62॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्मात्मना जितः।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः ॥63॥

भावार्थ: मन बुद्धि इन्द्रियां वश करके, आत्मा को आत्मा से जाने।
क्योंकि यह अपना बैरी-मित्र, इसको समझे और पहिचाने॥

आत्मा से आत्मा जीतने पर, यह भाई मित्र सहाई भी।
जीता जाने पर मित्र यही, न जीत सके तो रिपु यही॥

अविजित्य य आत्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रान्वाजितामात्यः सोऽवशः परिहीयते ॥64॥
आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरुपेण यो जयेत्।
ततोऽमात्यानमित्राँश्च न मोघं विजिगीषते ॥65॥

भावार्थ: बिन जीते स्वयं को, जो भी नृप, मन्त्री को जीतना चाहता है।
मन्त्री बिन जीते, जीते रिपु, निश्चय ही हार को पाता है॥
शत्रु-सा समझ निज आत्मा को , पहिले से जीत ले जाता है।
निज मन्त्री जीत शत्रु जीते, हर समय नृप जय पाता है॥

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ॥66॥

भावार्थ: सूक्षम छेदों के जाल में फंस, दो बड़ी मीन मिल काटें उसे।
यों मिल दोनों ही काम क्रोध, मानव बुद्धि को नष्ट करें॥

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ सम्भारान् योऽधिगच्छति।
स वै सम्भृतसम्भारः सततं सुखमेधते ॥67॥

भावार्थ: धर्म अर्थ समझकर नर जग में, जोड़े जो प्रीत जय साधनों को।
वह साधन सम्पन्न लगातार, पाता इच्छित अरमानों को॥

यः पञ्चाभ्यन्तराञ्शत्रूनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम् ॥68॥

भावार्थ: पंच ऐन्द्रिय विषयों के मनः रोग, अन्तः रिपुओं को जीते बिना।
जो चाहे जीतना अन्य रिपु, बाहिय रिपुओं से नित पिटता॥

दृश्यन्ते हि महात्मानो वध्यमानाः स्वकर्मभिः।
इन्द्रियाणामनीशत्वाद्राजानो राज्यविभ्रमैः ॥69॥

भावार्थः बन इन्द्रय दास भोगों में पड़े, रावण से राजा बड़े बड़े।
सब फंस कर भोग विलासों में, बिन काल मौत की भेट चढ़े॥

असंत्यागात्पापकृतामपापाँस्
तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।
शुष्केणार्द्र दह्यते मिश्रभावात
तस्मात्पापैः सह सन्धिं न कुर्यात्॥70॥

भावार्थः दुष्टों का त्याग न करके सन्त, उन जैसा ही दुःख पाते हैं।
ज्यों सूखे काष्ट के साथ साथ, गीले लक्कड़ जल जाते हैं॥

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्च पञ्चप्रयोजनान्।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम्॥71॥

भावार्थः शब्द स्पर्श रुप रस गन्ध विषय, गहती कुमार्गिनी इन्द्रियों को।
प्रमाद के कारण वश न करे, नित विपद ग्रसती है उसको॥

अनसूयार्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता।
दमः सत्यमनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम्॥72॥

भावार्थः सत्युणों में अवगुण न लखना, सन्तोष सहिष्णुता सत्य भाषण।
स्वच्छता अन्दर और बाहर की, मन इन्द्रियों का भी अभिष्ट दमन॥
सरल भाव सादगी स्वच्छ चित्त, पर उपकार भावना शिष्ट वचन।
हे धृतराष्ट्र! महाराज कभी, नहीं दुष्ट में होते ये सद् गुण॥

आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत॥73॥

भावार्थः निज आत्म लखे सब प्राणियों में, चंचल न होना करना सहन।
सुख दुःख पराजय-जय हानि-लाभ, मान अमान स्तुति निन्दा वहन।
गरमी सर्दी सब सहना द्वन्द, बकवास न कर संयत भाषा।
और दानशीलता गुण ये सभी, नहीं मिलते नीचों में भाता।

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान्।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते॥74॥

भावार्थः कटु वचनों से निन्दा करके, ज्ञानी को अबुद्ध दुःख देते हैं।
कटु भाषी पाप को भोगता है, पर सहन शील मुक्त रहते है॥

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ॥75॥

भावार्थः दुष्टों की ताकत है हिंसा, मुलजिम दण्डना बल राजा का
कर देना छिमा बल गुणियों का, नित सेवा भाव बल महिला का

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ॥76॥

भावार्थः सम उचित बोल वाणी संयम, नृप! बड़ा कठिन माना जाता
आकृष्ट सार्थ भी कहना दुरुह, तब भी बोले संयत भाषा।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक्सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ॥77॥

भावार्थः मीठी भाषा में कही बात; नृप कई तरह सुख देती है।
कटु शब्द से फूटी वही बात, पर वजह अनर्थ की बनती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ॥78॥

भावार्थः भर जाता बाण से बिन्धा घाव, फूटे बन कटा कुल्हाड़े का
पर कटु वचनों से किया घाव, होता धातक जो नहीं भरता।

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ॥79॥

भावार्थः कर्णी नालीक नाराच बाण, देहों से निकाले जा सकते।
नही निकल सकें बाणी के शूल, क्यों कि हृदय में धंस जाते॥

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ॥80॥

भावार्थः मुंह से निकला कटु वचन बाण, औरों के बींधता मर्म स्थल।
नर बिन्ध जिस से दिनरात दुःखी तजदें वाणी के बाण सुजन॥

विशेष : यहां विदुर जी यह संकेत कर रहें हैं, कि तुम्हारे पुत्रों ने सभा में द्रौपदी को जो दुर्वचन कहे थे, वे द्रौपदी और पाण्डवों के हृदय में बैठे हुये हैं। अतः वे तुम्हारे पुत्रों के अपराध क्षमा नहीं करेंगे।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति॥81॥

भावार्थः सुर शक्ति हराना चाहें जिन्हें, हर लेती, उन की बुद्धियों को।
धी विकृत ही उन से इसीलिये, करवाती अधम कार्यो को॥

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नावसर्पति॥82॥

भावार्थः बुद्धि के मलिन हो जाने पर, और नाश काल के आने पर।
नीति भी अनीति ही लगती, जो जम जाती है हृदय पर॥

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।
पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे॥83॥

भावार्थः कौरवों–बुद्धि पाण्डव रुद्ध से, हो गई भ्रष्ट अब नाश करन।
इन भ्रष्ट मति निज पुत्रों को, नहीं जान रहे तुम क्यों राजन ?

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्।
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः॥84॥

भावार्थः सब राज गुणों में सम्पन्न जो, लोकों का राज करने में निपुण।
निज आज्ञाकारी युधिष्ठिर को, अतिशीघ्र नृप! देदो शासन॥

अतीत्य सर्वान पुत्राँस्ते भागधेयपुरस्कृतः।
तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्ववित्॥85॥

भावार्थः धर्म अर्थ का तत्व जाना हुआ, बुद्धि का तीव्र भागीदारी।
हर सुत से तुम्हारे बढ़ कर है, बनने को राज का अधिकारी॥

अनुक्रोशादानृशंस्याद्योऽसौ धर्मभृतां वरः।
गौरवात्तव राजेन्द्र बहून् क्लेशाँस्तितिक्षते॥86॥

भावार्थः धर्मात्माओं में श्रेष्ट युधि, निज सौम्यता सादगी के कारण।
आप की यश रक्षा के लिये, बहु करता आ रहा कष्ट सहन॥

द्वितीय अध्याय समाप्त

तृतीय अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच

ब्रूहि भूयो महाबुद्धे धर्मार्थसहितं वचः।
शृण्वतो नास्ति मे तृप्तिर्विचित्राणीह भाषसे ॥1॥

भावार्थः उत्तम मन्त्राः महा बुद्ध विदुर, धर्म अर्थ ज्ञान यह पुनः कहो,
भरा नहीं मन मेरा अभी, तुम गूढ वचन जो कह रहे हो।

विदुर उवाच-

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम्।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥2॥

भावार्थः जीवों पै दया तीरथ नहाना, बातें दो एक सी लगती हैं।
इन दो में सब पर दया श्रेष्ठ, देखे जाने पर मिलती हैं।

विशेष : तीर्थ शब्द का एक अर्थ शास्त्र भी होता है। एक ओर सब शास्त्रों का अवगाहन और दूसरी तरफ सब प्राणियों पर दया करना इन दोनों में व्यवहारिक दृष्टि से दया श्रेष्ठ है।

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥3॥

भावार्थः अपने इन पाण्डव पुत्रों पर, हे नृप! सदा ही दया करो।
ऐसा कर जग में यश होगा, और स्वर्ग के साधन प्राप्त करो॥

विशेष : आर्जव का एक अर्थ वैषम्य रहित होना भी है। विदुरजी कह रहें है कि तुम कौरव-पाण्डव दोनों को समान रुप से देखो।

यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते।
तावत्स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥4॥

भावार्थः जब तक मानव की जग में नृप! पुण्य कीर्ति गाई जाती है।
तब तक ही स्वर्ग में मान रहे, पूर्व कथा बताई जाती है॥

विशेष : यह श्लोक प्ररोचना मात्र हैं, रुचि उत्पन्न करने वाला कथन है।

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विरोचनस्य संवादं केशिन्यर्थे सुधन्वना ॥5॥

भावार्थः केशिनी स्वयम्बर से सम्बद्ध, इक प्रासंगिक इतिहास सुनो।
सुधन्वा के साथ विरोचन का, जो हुआ विचित्र संवाद सुनो॥

स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया॥6॥

भावार्थः केशिनी नामक रुप अनूप, कन्या अति उत्तम वर पाने।
स्वयंबर के बीच में खड़ी हुई, पति अपने जोड़ का ही ब्याहने॥

विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह।
प्राप्तुमिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येन्द्रं प्राह केशिनी ॥7॥

भावार्थः दृढाभिलाषी दैत्य विरोचन, आया कन्या के पाने को।
तब कन्या विरोचन से बोली, जो पूंछू आओ बताने को॥

केशिन्युवाच-

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांसो दितिजाः स्विद्विरोचन।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति॥8॥

भावार्थः पूछा केशन ने विरोचन से, है दैत्य श्रेष्ठ या कि ब्राह्मण।
यदि सच ही श्रेष्ठ ब्राह्मण है, तो क्यो न करु सुधन्वा का चयन॥

विरोचन उवाच

प्राजापत्यास्तु वै श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के देवाः के द्विजातयः॥9॥

भावार्थः विरोचन बोला हे केशिनी! सुन, प्रजापति की हम सन्तानें हैं।
निश्चय ही श्रेष्ठ और उत्तम हैं, ये सारे लोक हमारे हैं॥
अब कौन विप्र है कौन देव? है मेरे सामने क्या गिनती?
हम ही जगती के स्वामी हैं, फिर मुझे ही क्यो न तुम चुनती?

केशिन्युवाच-

इहैवावां प्रतीक्षाव उपस्थाने विरोचन।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ॥10॥

भावार्थः विरोचन से कहा केशिनी ने, सुधन्वा की कलतक प्रतीक्षा करें।
वह कल को अवश्य आवेगा, तब तुम दोनों की परीक्षा करें॥

विरोचन उवाच-

तथा भद्रे करिष्यामि यथा त्वं भीरु भाषसे।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि सङ्गतौ ॥11॥

भावार्थः तब बोला विरोचन केशिनी से, तुम भीरु हो जो चाहो करो।
आजाने पर ही सुधन्वा के, तुम हम दोनों को कल परखो॥

विदुर उवाच-

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले।
अथाजगाम तं देशं सुधन्वा राजसत्तम।
विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः ॥12॥

भावार्थः बोले विदुर हे श्रेष्ठ नृप! रात गये सुबह आने पर।
जहां केशिनी विरोचन ठहरे थे, वहाँ पहुँचा सुधनवा भी जाकर॥

समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः ॥13॥

भावार्थः विद्वान का आना घर पै देख, केशिनी ने उचित सम्मान किया।
आसन देकर हे श्रेष्ठ नृप! फिर धोये पैर और अर्घ्य दिया॥

सुधन्वा उवाच-

अन्वालभे हिरण्मयं प्राह्लादे ते वरासनम्।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वासेऽहं त्वया सह॥14॥

भावार्थः यह बोला सुधन्वा हे विरोचन! स्वर्णासन यह तुम्हारा छूता हूँ।
पर इस पर बैठ नहीं सकता, क्यों कि मैं तुम से ऊंचा हूँ।

विशेष : यहां एक विसंगति है। सुधन्वा को आसन केशिनी ने दिया था, विरोचन ने नहीं, मूल महाभारत से इस विसंगति का कोई समाधान नहीं मिलता है।

विरोचन उवाच-

तवार्हते तु फलकं कूर्चं वाप्यथवा बृसी।
सुधन्वन्न त्वमर्होऽसि मया सह समासनम्॥15॥

भावार्थः सुधनवा सुनो! बोला विरोचन, शुभ तुम्हें पट्ट तृण कुश आसन।
संग मेरे बैठने योग्य नहीं, तुम रखते नहीं हो मुझ से गुण॥

विशेष : जैसे को तैसा सटीक उत्तर है। अपमान का फल अपमान ही होता है।

सुधन्वा उवाच-

पिता पुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि।
वृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम्॥16॥

भावार्थः सुधन्वा बोला कि पिता पुत्र, एक साथ ये दोनों बैठ सकें।
दो छतरी दो शुद्र विप्र द्वे, दो वृद्ध वैश्य संग में बैठे॥
समगुण व स्वभावों के कारण, सब साथ साथ बैठा करते।
पर अन्य कोई एक दूसरे के, आसन पै कभी नहीं हो सकते॥

पिता हि ते समासीनमुपासीतैव मामधः।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुध्यसे॥17॥

भावार्थः यह सुनो विरोचन तेरा पिता भी, मुझ से नीचे बैठता है।
तू लाड़ प्यार में पला बाल, यूं शिष्टाचार न जानता है॥

विरोचन उवाच-

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः।
सुधन्वन्विपणे तेन प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥18॥

भावार्थः सुधन्वा से विरोचन बोला कि, हमरा जो अश्व पशु स्वर्ण धन है।
अंकवायें श्रेष्ठता शर्त लगा, उन से जोभी सर्व विज्ञजन हैं॥

सुधन्वा उवाच-

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥19॥

भावार्थः सुधंन्वा ने कहा, सब रक्खो पास, अपना जो भी पशुधन स्वर्ण है।
पूछें उनसे जो ज्ञानी पूर्ण, प्राणों की शर्त पर यह प्रण है॥

विरोचन उवाच-

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
न तु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित् ॥20॥

भावार्थः सुधन्वा से विरोचन यह बोले, शर्त लगा कहां पर जायेगें?
क्योंकि हम देव-मनुष्यों को, नहीं निज मध्यस्थ बनायेंगे॥

सुधन्वा उवाच-

पितरं ते गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत्॥21॥

भावार्थः दैत्य से कहा सुधन्वा ने, प्राणों की शर्त लगा करके।
तेरे ही पिता के पास चलें, वे बोलें झूठ न सुत के लिये॥

विशेष : आर्य संस्कृति का कैसा उज्जवल पक्ष है। प्राचीन आर्य सर्वत्र गुणों का सम्मान करते थे।

विदुर उवाच-

एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा।
विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति ॥22॥

भावार्थः बोले विदुर तब ये दोनों, क्रोद्धाग्नि में जलते हुये।
पहुंचे प्रहलाद के पास में जा, सुधन्वा-विरोचन चलते हुये॥

प्रह्लाद उवाच-

इमौ तौ सम्प्रदृष्येते याभ्यां न चरितं सह।
आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गविहागतौ॥23॥
किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथः सह।
विरोचनैतत् पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना॥24॥

भावार्थः लख सुत व सुधन्वा साथ साथ, तब पड़े प्रह्लाद अचम्भे में।
दो क्रुद्ध सांप से साथ साथ, आते ये चले एक रस्ते से॥
प्रह्लाद ने यह पूछा सुत से, हो आज इकट्ठे तुम क्यों कर?
नहीं पूर्व कभी ऐसे देखा, अब साथ चले क्या मित्र होकर?

विरोचन उवाच-

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे।

प्रह्लाद तत्त्वं पृच्छामि मा प्रश्नमनृतं वदेः ॥25॥

भावार्थः विरोचन बोला हे पिता श्री ! इससे न मेरी मित्रता है।
वद् प्राण शर्त तुम से पूछें, कहां झूठ कहां पर सत्यता है ?

प्रह्लाद उवाच-

उदकं मधुपर्कं वाप्यानयन्तु सुधन्वने।

ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरीकृता ॥26॥

भावार्थः यह कहा प्रह्लाद ने सेवक से, इन्हें मधुपर्क जल भेंट करो।
फिर कहा विप्र से पूज्य हो तुम, हृष्ट पुष्ट गऊ यह स्वीकारो॥

सुधन्वा उवाच-

उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम।

प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः।

किं ब्राह्मणाः स्विच्छ्रेयांस उताहो स्विद्विरोचनः ॥27॥

भावार्थः बह्मण बोला प्रह्लाद श्री! मधुपर्क तो पथ में ले ही लिया।
बस प्रश्न का उत्तर चाहते हैं, है श्रेष्ठ विरोचन विप्र अथवा ?

प्रह्लाद उवाच-

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः।

तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथमस्मद्विधो वदेत् ॥28॥

भावार्थः तब कहा प्रह्लाद ने विप्र सुनो, सुत एक ही तुम तो साथ खड़े।
मुझ सा व्यक्ति फिर ऐसे वाद में, कैसे कहो निर्णय दे दे ?

सुधन्वा उवाच-

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वाऽन्यत्स्यात्प्रियं धनम्।

द्वयोर्विवदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया॥29॥

भावार्थः निज औरस सुत को हे प्रह्लाद! धन वैभव भूराज अन्यान्य दो।
वादी प्रतिवादी दोनों को, सच्चा सच्चा पर निर्णय दो॥

प्रह्लाद उवाच-

अथ यो नैव प्रब्रूयात्सत्यं वा यदि वाऽनृतम्।
एतत् सुधन्वन्पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत् ॥30॥

भावार्थः बोले प्रह्लाद सुधन्वा से, जो सत्य का न निर्णय करता है।
और सत्य-झूठ में मौन रहे, उसे कौन कौन फल मिलता है॥

सुधन्वा उवाच-

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः।
यां च भाराभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत्॥31॥

भावार्थः पति सोया देख ज्यों सौत के संग, प्रत्यक्ता तिय निशि कष्ट सहे।
जुऐ में बाजी हारा हुआ, नर रातों भर बेचैन रहे॥
बोझा ढोकर अंग चूर हुआ, जिस विपद में रात बिताता है।
अन्याय से उत्तर देकर यों, वह पापी कष्ट उठाता है॥

नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः।
अमित्रान् भूयसः पश्येद् यः साक्ष्यमनृतं वदेत्॥32॥

भावार्थः नगर प्रवेश से रोका गया, और द्वार के बाहर हो भूखा।
अनगिनत बौरियों को देखे, शत्रु की फौज से घिरा हुआ॥
प्रह्लाद ध्यान धर आप सुनो, जिस तरह क्र दुःख ये भोगते है।
यों झूठी गवाहियां दे देकर, संकट-अग्नि में दहकते हैं॥

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते॥33॥

भावार्थः बकरी आदि के लिए झूठ, फल पांच नरों की हत्या है।
जो गऊ की खातिर कहे झूठ, बध दस लोगों का करता है॥
जो बोले झूठ घोड़े के लिये, मानो सौ मानव मारता है।
इक नर के वास्ते बोला झूठ, समझो एक सहस्र संहारता है॥

हन्ति जातानजाताँश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मा स्म भूम्यनृतं वदेः॥34॥

भावार्थ: कहता है झूठ सोने के लिए, वर्तमान भविष्य सुत सभी नशे।
भूमि के लोभ का झूठा तो, सारे ही कुटुम्ब का नाश करे॥

प्रह्लाद उवाच-

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद् विरोचन।
माताऽस्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः॥35॥

भावार्थ: दैत्य बोला सुधन्वा का पिता, अंगिरा मुझ से है श्रेष्ठ बड़ा।
तुम से सुधन्वा, तेरी मात से, मां इसकी श्रेष्ठ तू शर्त पिटा॥

विरोचन सुधन्वायं प्राणनामीश्वरस्तव।
सुधन्वन्पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम्॥36॥

भावार्थ: बेटे से कहा प्रह्लाद ने कि, तू विप्र से बाजी हार गया।
इस कारण अब यह पूरी तरह, स्वामी है तुम्हारे प्राणों का।
लेकिन मैं विप्र सुधन्वा से, सविनय निवेदन करता हूँ।
हे विप्र! आप से सुत के लिये, प्राणों की भिक्षा चाहता हूँ॥

सुधन्वा उवाच-

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात्प्रह्लाद दुर्लभम्॥37॥

भावार्थ: सुधन्वा बोला हे प्रह्लाद! तुमने जो धर्म कृतार्थ किया।
कोई मोह वश झूठ नहीं बोला, उत्तर भी बड़ा ही यथार्थ दिया।
अतः अकेले सुत को तुम्हारे, तुम को ही समर्पित करता हूँ।
जीवन की बाजी हारे को, फिर प्राण मैं अर्पित करता हूँ॥

विशेष : प्रह्लाद ने सत्य बोल कर, उस का फल भी तुरन्त पा लिया।

एषः प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः सन्निधौ मम॥38॥

भावार्थ: प्रह्लाद लौटाये प्राण इसे, पर केशन के सम्मुख पग धोकर।
स्वीकार करे मेरी उच्चता, अपने को मुझ से निम्न होकर॥

विदुर उवाच-

तस्माद्राजेन्द्र भूम्यर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि।
मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन्॥39॥

भावार्थः अब बोले विदुर हे धृतराष्ट्र! भू हेतु झूठ है उचित नहीं।
निज सुतों राज्य की खातिर भी, कभी झूठ कहे में सुहित नहीं।
सच सच न बोलकर पुत्र हेतु, मन्त्री पुत्रों से नष्ट न हो।
बस यही हमारी कामना है, हो सुहित तुम्हें कोई कष्ट न हो॥

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्॥40॥

भावार्थः ग्वालों की तरह देवता रक्षा, दण्ड हाथ में लेकर नहीं करते।
वे जिसे बचाना चाहते हैं, उसे सद् बुद्धि से युक्त करते ॥

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः॥41॥

भावार्थः शुभ कर्मों में जैसे-जैसे, यह मानव मन को लगाता है।
हो इच्छा पूर्ण वैसे-वैसे, प्रभु उसके यश को बढ़ाता है॥

नैनं छन्दाँसि वृजिनात्तारयन्ति
मायाविनं मायया वर्तमानम्।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्
छन्दाँस्येनं प्रजहत्यन्तकाले॥42॥

भावार्थः कपटी छद्मी और छली पुरुष, पापों से नही बच सकता है।
कर सके न रक्षा उसकी वेद, फल पाप भोगना पड़ता है।
ज्यों पक्षी पंख निकलने पर, निज घोंसले को तज देता है।
मायावी पुरुष को वेद भी यों, निश्चय ही अलग कर देता है॥

विशेष : वेदाध्ययन पापाचरण और पाप कर्म के फल भोग से बचाता है परन्तु जो जान बूझकर पाप करता है, ऐसे मायावी को वेद के अध्ययन से भी कोई लाभ नही होता।

मद्यपानं कलहं पूगवैरं
भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम्।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं
वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्था: प्रदुष्ट: ॥43॥

भावार्थ: समूह रोध कलह और मद्यपान, पति–पत्नि में झगड़ा करना
रिश्तों में कराना करना भेद, नर नारी में पंगा करना।
ये दुष्ट हैं पथ सब कोही त्याज्य, इन पर न कभी चलना चाहिये।
प्रत्येक दशा में बुरा मार्ग, हे नृप! अवश्य तजना चाहिये॥

सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्वं
शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च
नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ॥44॥

भावार्थ: रहा चोर फिर बनिया हुआ, दलाल ज्योतिषी अरु जुवारी।
और वैद्य नचिय्या शत्रु मित्र, नासाक्ष्य इनका सिद्धकारी॥

आगारदाही गरद: कुण्डाशी सोमविक्रयी ।
पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक् पारदारिक: ॥45॥
भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विज: ।
अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दक: ॥46॥
स्रुवप्रग्रहणो व्रात्य: कीनाशश्चात्मवानपि ।
रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात्सर्वे ब्रह्महभि: समा: ॥47॥

भावार्थ: घर को जलादे विष देदे, नित करे बुराई बेचे सुरा।
व्यवसाय करे व्यभिचार युक्त, बेचे शस्त्र, चुगली करता॥
नास्तिक व ज्योतिषी, पतित विप्र, भ्रुण हत्याएं करने वाला।
मित्र द्रोही परतिय-गामी, गुरु पत्नि गहे पीता मदिरा॥
वेद का निन्दक चापलूस, कव्वे सा मर्म कुरेदता हो।
जो शरणागत का घात करे, संग पतित के भोजन करता हो॥
पशुओं को मारता अति उग्र, जो इन दोषों को करता है।
राजन! नित ऐसे पापियों को, ब्रह्म हत्या का पाप ग्रसता है॥

तृणोल्कया ज्ञायते जातरूपं
वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।
शूरो भयेष्वर्थकृच्छ्रेषु धीरः
कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ॥48॥

भावार्थः छेदन व तपाने से स्वर्ण की, सदाचार पहिचान भले नर की
बर्ताव में साधु भय में शूर, विपदा में धीर, रिपु-मित्र की।

जरा रुपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया।
क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा
ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ॥49॥

भावार्थः रुप का नाश बुढापा करे, और आशा धैर्य को खोती
करती है मौत प्राणों को नष्ट, नित चुगली धर्म आचरण खोती
गुस्सा वैभव को हरता है, दुष्टों का संग स्वभाव हरे
और विषय वासना शर्म हरे, अभिमान सभी गुण नष्ट करे

श्रीर्मङ्गलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात्सम्प्रवर्धते।
दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमाच्च प्रतिष्ठते ॥50॥

भावार्थः सम्पत्ति मिले उत्तम कर्म से, और कर्म चातुर्य से बढ़ती
जड़ जमती शीघ्र कर्म करने से, इन्द्रियों के जीत स्थिर बनती

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च
दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥51॥

भावार्थः पढ़ शास्त्र कुलिनता सुक्ष्म धी, मन-ऐन्द्रिय निग्रह मित्त भाषण
पराक्रम व शक्ति सहित दान, कृतज्ञता करे यश का बर्धन

एतान् गुणाँस्तात महानुभावा-
नेको गुणः संश्रयते प्रसह्य।
राजा यदा सत्कुरुते मनुष्यं
सर्वान् गुणानेष गुणो विभाति ॥52॥

भावार्थः गुण धी आदि तेजमय अष्ट दाव, गुण एक राज सत्कार मिले।
हो जिस से स्वयं सब गुण उत्पन्न, प्राकृत न ये गुणहोने से॥

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके
स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भिश्
चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ॥53॥

भावार्थः गुण आठ जगत में ऐसे हैं, नित स्वर्ग का मार्ग बताते हैं।
सन्त–पीछे चलें इन में से चार, अन्य चार को सन्त अपनाते हैं॥

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च
चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्भिः।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं
चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ॥54॥

भावार्थः यज्ञ दान, अध्ययन, तप ये चारों, सज्जनों में अवश्य होते हैं।
दम, सत्य, सरलता दया चार, इन को वे यत्न से सेवते हैं॥

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ॥55॥
तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ॥56॥

भावार्थः सत्य भाषण, तप दान यज्ञ,दया छिमा अध्ययन शास्त्रों के
और लोभ त्याग ये आठों ही, सत्मार्ग धर्म के कहे गये॥
इन आठ गुणों में यज्ञ अध्ययन, तप दान चार ऐसे गुण हैं।
किया करते जिन्हें दम्भ से ही दुष्ट, पर अन्य गुणों से वे शून्य है।

लोभ त्याग सत्य दया छिमा, दुष्टों में कभी नही रह सकते।
हे राजन! ज्ञानी इसी लिये, व्यवहार समझकर ही करते ॥

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा
वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥57॥

भावार्थः वह सभा सभा नहीं होती है, जहां वृद्ध पुरुष उपलब्ध नहीं।
वृद्ध भी वह होता वृद्ध नहीं, जो करे धर्म का कथन नहीं ॥
वह धर्म भी होता धर्म नहीं जो पूर्ण सत्य से युक्त न हो।
वह सत्य भी कहाता सत्य नही, जो छल व कपट से रिक्त न हो॥

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः ॥58॥

भावार्थः धन, बल, अध्ययन, शील, शौर्य, विद्, रुप कुलीनता सत्य बचन।
युक्ति युक्त भाषण की कला, दस स्वर्ग के होते हैं लक्षण॥

पापं कुर्वन् पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन् पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यन्तमश्नुते ॥59॥
तस्मात्पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥60॥
नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः ॥61॥
वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति।
तस्मात्पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः ॥62॥

भावार्थः कर पाप कर्म निन्दित होकर, नर पाप कर्म फल भोगता है।
शुभ कर्म का कर्ता यश पाकर, यश युक्त फलों को भोगता है॥
शुद्धव्रती पुरुष को इसी लिये, दुष्कर्म नही करना चाहिये।

पापों के कर्म कर पुनःपुनः नहीं बुद्धि नष्ट करना चाहिये॥
बुद्धि के नष्ट हो जाने पर, नर पाप कर्म ही करता है।
किया बार-बार जो पुण्य कर्म, बुद्धि की वृद्धि करता है॥
इस लिये बुद्ध शुभ कर्म करें, पुण्य कर्ता कीर्ति पाता है।
रहे पुण्य करने में सावधान, पुण्य ही पार लगाता है॥

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः।
स कृच्छ्रं महदाप्रोति नचिरात्पापमाचरन् ॥63॥

भावार्थः पर निन्दा करे कटु बचन कहे, मर्मो पर चोटें करता है।
अति क्रुर धूर्त अरु बैर करे, वह पापी कष्ट में पड़ता है॥

अनसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन् सदा।
नकृच्छ्रं महदाप्रोति सर्वत्र च विरोचते ॥64॥

भावार्थः नित पुण्य करे, निन्दा न करे, जो बुद्ध सदा शुभ ही करता।
सुख मिलता उस को बहुत बड़ा सर्वत्र उसे यश भी मिलता॥

प्रज्ञामेवागमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥65॥

भावार्थः धीमानों से जो पाता ज्ञान, निश्चित विद्वान कहाता है।
वह धर्म-अर्थ दोनों पाकर, सुख लोक परलोक बढ़ाता है॥

दिवसेनैव तत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्ट मासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखं वसेत् ॥66॥

भावार्थः दिन में करले कुछ ऐसा काम, सुख से सोये निश्चिंत बने।
पुरुषर्थ वहीं अष्टमास करे, वर्षा ऋतु में जो मौज रहे॥

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन तत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत् ॥67॥

भावार्थः कुछ ऐसा करे यौवन में ही, बूढ़ा होकर सूख मिल जावे।
जीवन में करे कुछ शुभ उत्तम, परलोक में आनन्द आ जावे॥

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ॥68॥

भावार्थः खा कर के पचे खाये अन्न की, और भोग्या वृद्ध भार्याकी।
सन्त वीतराग जयवीर शूर, प्रशंसा हो घर घर इन की॥

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद् भवति ततोऽन्यदवदीर्यते॥69॥

भावार्थः अन्याय से धन को हड़पने का, कहीं छिद्र ढ्का जो जाता है।
दानादि कर भी छिपा पाप, इक दिन नंगा हो जाता है॥

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥70॥

भावार्थः नित रहबर गुरु जितेन्द्रिय का, दुष्टों का नियंता है राजा।
गाफिल न रहे कोई मन में, प्रभु शासक छिपे पापियों का॥

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च॥71॥

भावार्थः ऋषि महात्मा के कुल का सरिता उद्गम स्थानों का।
कोई यत्न जानने का न करे, तिय दुराचार के कारणों का॥

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः शीलभाग्राजंश्चिरं पालयते महीम्॥72॥

भावार्थः नृप! दानशील ब्राह्मणों का भक्त, सज्जन से व्यवहार सरलता का।
करे ऐसा क्षत्रिय शील युक्त, रहे अन्त समय तक ही राजा॥

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥73॥

भावार्थः वैभव सम्पन्न स्वर्णिम् भू को, ये तीन लोग भोगा करते।
विद्या का ज्ञाता शूर वीर, जो नृप सेवा के गुण रखते॥

बुद्धिश्रेष्ठनि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जंघाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च॥74॥

भावार्थः धी से होते सिद्ध उच्च कर्म, मध्यम् भूजबल से सर होते।
हबड़ दबड़ कपटों से अधम, सिर भार धरे निम्नतर होते॥

दुर्योधनेऽथ शकुनौ मूढे दुःशासने तथा।
कर्णे चैश्वर्यमाधाय कथं त्वं भूतिमिच्छसि ॥75॥

भावार्थः हे नृप! भला शकुनि दुर्योधन, कर्ण दुशासन अधमों पर।
तुम राज छोड़ कर सुख चाहते, यह सम्भव हो सकता। क्यों कर ?

सर्वैर्गुणैरुपेतास्तु पाण्डवा भरतर्षभ।
पितृवत् त्वयि वर्तन्ते तेषु वर्तस्व पुत्रवत् ॥76॥

भावार्थः युधिष्ठिर सर्वगुण सम्पन्न है, तुम्हें मान पितृ सम् देता वो।
सच मुच सुख चाहो नृप! अगर, सुत सम् उस से व्यवहार करो ॥

तृतीय अध्याय समाप्त्

चतुर्थ अध्याय

विदुर उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम्॥1॥

भावार्थः बोले विदुर धृतराष्ट्र! सुनो, प्रासांगिक दृष्टान्त बताता हूं।
पूर्व सुना आत्रये साध्यों का, तुम को संवाद सुनाता हूं॥

चरन्तं हंस रुपेण महर्षि संशित व्रतम्।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा॥2॥

भावार्थः अति तपी ऋषि बुद्ध आत्रेय से, सन्यासी रुप में चरते हुये।
कभी साध्य नाम के देवों ने, यह पूछा था यूं कहते हुये॥

साध्या उवाच-

साध्या देवा वयमेते महर्षे
दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमातुम्।
श्रुतेन धीरो बुद्धिमाँस्त्वं मतो नः
काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम्॥3॥

भावार्थः यूं बोले देव हे महर्षि! दर्शन से आपके गद् गद् हैं।
प्रतिभा तुम्हारी आंकने में, नहीं समर्थ हैं, क्योंकि अनभिज्ञ हैं॥
पर महाज्ञान के कारण तुम, महा बुद्ध लगो धैर्य शाली।
दो सुना विज्ञों की कृपा कर , वह वाणी वेद महा अर्थ वाली॥

हंस उवाच

एतत्कार्यममराः संश्रुतं मे
धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं
प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत॥4॥

भावार्थः हंस यह बोला हे देव गणों! निज पुरखों से कर्म-कर्त्तव्य सुने।
रहे कष्टों में भी धर्म दृढ, शम प्रभु पाने के साधनों से॥

नर लगातार अभ्यासों से, निज हृदय–अज्ञान और शंसय हरे।
रिपु–मित्र संग हो सावधान, स्व आत्म समान सदा बरते॥

आक्रुश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति॥5॥

भावार्थः औरों की गाली खाकर भी, न बुरा कहे ना दे गाली।
सहनशील का मन्यु दुष्ट को, दहता रखता पुण्य से खाली॥

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य
मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो
रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत॥6॥

भावार्थः अपमान करे ना गाली दे, ना दुष्ट चरित ना अभिमानी।
नीचों की सेवा संग ना करे, मित्र द्रोह छेड़ दे कटुवाणी॥

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून्
रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।
तस्माद् वाचमुषतीमुग्ररूपां
धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत॥7॥

भावार्थः कटु रुक्ष बोल मर्म स्थल को, दहें हड्डी हृदय प्राणों को।
धर्मात्म को चाहिये छोड़ें सदा, कटु रुखे दहते बोलों को॥

अरुन्तुदं परुषं रूक्षवाचम्
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां
मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम्॥8॥

भावार्थः मर्म स्थल जो घायल करता, कटु बोल शूल से दहता हो।
उसे सब से अभागा महादरिद्र, लिये मुंह में मौत फिरा समझो॥

परश्चेदेनमभिविध्येत बाणैर्
भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः।

स विध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो
विद्यात्कविः सुकृतं मे दधाति ॥9॥

भावार्थः धीमान को कोई विरुद्ध पुरुष, सूरज अग्नि सा जलाता हुआ।
कटु वाणी सरों से बींधे तो, समझे मुझ में वह पुण्य भरता॥

यदि सन्तं सेवते यद्यसन्तं
तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव।
वासो यथा रङ्गवंश प्रयाति
तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥10॥

भावार्थः सत्पुरुष का संग या दुष्ट–संग, संग तपसी का या चोरों का।
अपने वश में कर लेता है, ज्यों कपड़ा रंगों के वंश होता ॥

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्
यो नाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै
तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥11॥

भावार्थः निन्दा न कराये नहीं करे, कोई चोट, चोट को खाकर भी।
चाहे न मारना दुष्ट को भी, करें उस का मान देव गण भी॥

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः
सत्यं वदेद् व्याहृतं तद् द्वितीयम्।
प्रियं वदेद् व्याहृतं तत् तृतीयं
धर्मं वदेद् व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥12॥

भावार्थः कहने की बजाय अच्छा मौन, श्रेष्ठ है इस से सत्य भाषण।
इस से भी विशिष्ट सत्य प्रिय बोल, सर्वोच्च धर्म पथ सत्य वचन॥

यादृशैः संनिविशते यादृशाँश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः ॥13॥

भावार्थः जैसों में उठता बैठता नर, और जैसा होना चाहता है।
जैसों की सेवा करता है, वह वैसा ही हो जाता है॥

यतो यतो निवर्तते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि ॥ 14 ॥

भावार्थ: छुटते अन्त में सब जग के भोग, यह समझ बुद्ध जो विषय तजें।
वह कष्ट जरा नहीं मानतें हैं, सुख विषय छोड़ कर ही मिलते ॥

न जीयेत नानुजिगीषतेऽन्यान्
न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो
न शोचति हृष्यति नैव चायम् ॥ 15 ॥

भावार्थ: न जीते किसी को खुद न जिते, नहीं बैर करे अन्य की हिंसा
है निन्दा बड़ाई सम जिसको, वह सुख दुख से ऊपर उठता ॥

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः ॥ 16 ॥

भावार्थ: है प्राणी मात्र का शुभ चिन्तक, हानि में लगाये मन न कभी
वह नम्र जितेन्द्रिय सत्यवादी, नर उच्च कोटि का निश्चय ही ॥

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपूरुषः ॥ 17 ॥

भावार्थ: सान्तवना न दे जो झूठ मूठ, निज किये प्रण को पालता है।
कहीं दोष जान हानि न करे, वह मानव मध्यम कोटि का है ॥

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो
नावर्तते मन्युवशात् कृतघ्नः।
न कस्यचिन्मित्रमथो दुरात्मा
कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः ॥ 18 ॥

भावार्थ: वश करना कठिन, हो भाग्य हीन, बदनाम क्रोध में भरा रहे।
कृतघ्न व दुष्ट है बिना मित्र, ऐसों को जग में अधम कहें ॥

न श्रद्दधाति कल्याणं परेभ्योऽप्यात्मशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः ॥ 19 ॥

भावार्थः शुभ कर्मों में विश्वास नहीं, सज्जनों पर शंका लाता है।
मित्रों का त्याग कर देता है, मानव निष्कृष्ट कहाता है॥

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान्।
अधमाँस्तु न सेवेत य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥20॥

भावार्थः कल्याण जो अपना चाहते हैं, सत्पुरुषों का ही संग करें।
मध्यम का विपद में लें लें साथ, पर अधमों से हर हाल बचें॥

प्राप्नोति वै वित्तमसद्बलेन
नित्योत्थानात् प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग् लभते प्रशंसां
न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम् ॥21॥

भावार्थः नर छल व कपट चोरी डाका, निन्दनीय तरीके अपनाकर।
उद्यम चातुर्य फौज नौकरी, कर धन से भर लेता घर॥
इस तरह से धन तो पालेता, यश प्रशंसा कीर्ति नहीं पाता।
उच्च घरों के उत्तम सदाचार, संस्कार से वंचित रह जाता॥

धृतराष्ट्र उवाच

महाकुलेभ्य, स्पृहयन्ति देवा
धर्मार्थनित्याश्च बहुश्रुताश्च।
पृच्छामि त्वां विदुर प्रश्नमेतं
भवन्ति वै कानि महाकुलानि ॥22॥

भावार्थः यूं विदुर से बोले धृतराष्ट्र, धर्म अर्थ में रत ज्ञानी मानी।
और देव भी इच्छा स्पृद्धा करें, उच्च कुल में जन्म को पाने की॥
मैं तुम से जानना चाहता हूँ, वे श्रेष्ठ महा कुल कौन से हैं?
वतलाओं सभी उन के लक्षण, जिन से देवता भी तरसते हैं?

विदुर उवाच-

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः
पुण्या विवाहाः सततान्नदानम्।

येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ॥23 ॥

भावार्थः सुख दुख आदि, पूर्ण द्वन्द सहन, आत्म संयत यज्ञ वेद–पठन।
गुण कर्म से करना शुद्ध विवाह, सद्चरित्र दान उच्च कुल लक्षण ॥

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनिश्
चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां
त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि ॥24 ॥

भावार्थः कुल सदाचार हो भंग नहीं, न पितृ दुखी, नित धर्माचरण।
भाषा बर्ताव झूठ न हो, कुल कीर्ति चाह, ये उच्च कुल गुण ॥

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ॥25 ॥

भावार्थः तज वेद पठन, पञ्च महायज्ञ, निन्दनीय विवाह के करने से।
उत्तम कुल भी बन जाते नीच, सत्धर्म उल्लघंन करने से ॥

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥26 ॥

भावार्थः जन हित के कार्यों के धनका, उपयोग गलत कर, करके गमन।
विप्रो का अनादर धन का हरण, करके हो जाते सुकुल–अकुल ॥

ब्राह्मणानां परिभवात्परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च ॥27 ॥

भावार्थः हे नृप! दबाकर ब्राह्मणों को, और हिंसा अनादर करने से।
उच्च कुल भी नीच हो जाते हैं, ब्रह्मणों की धरोहर हरने से ॥

कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥28 ॥

भावार्थः हों चाहे गौ पुरुषों से भरे, धन धान्य युक्त भूति पाते।
वे चरित्र भ्रष्ट हो जाने से, उच्च कुल में नहीं गिने जाते ॥

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ॥29॥

भावार्थः हों अल्प धनी निर्धन भीं भले, यदि सदाचार से सम्पन्न हैं।
आते श्रेष्ठ कुलों में ही, यश पाते बहुत ही वे जन हैं॥

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥30॥

भावार्थः कुल की श्रेणी में आने को, आचार ही प्रमुख कारण है।
आचार को रक्खें यत्न सहित, नहीं रहता सदा भौतिक धन है॥
धनहीन न होता हीन कभी, आचार भ्रष्ट नर है मुर्दा।
वित्त से होता है, श्रेष्ठ व्रत, सब तरह करें इसकी रक्षा॥

गोभिः पशुभिरश्वैश्च कृष्या च सुसमृद्धया।
कुलानि न प्ररोहन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ॥31॥

भावार्थः बकरी भेड़ गऊ पशु आदि, कृषि वैभव से बहु सम्पन्न।
उत्तम कुल कहलाते नहीं, जिन कुलों के हैं आचरण निम्न॥

मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु
राजाऽमात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैष्कृतिकोऽनृती वा
पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ॥32॥

भावार्थः नित सुजन यह इच्छा विनय करें, नहीं कुल में कोई भी बैर करे।
धन हरे न मन्त्री नृप कोई, नहीं मित्रों के संग द्रोह करें।
मिथ्याचारी बेईमान न हो, कृतज्ञ न कहाने वाला हो
पितृ-देव-अतिथि यज्ञ कर ही, हर नर अन्न खाने वाला हो॥

विशेष : वेद में कहा है- अशितावत्यति थावश्नीयात्-अर्थव 9/6(3)8
मनुष्य को चाहिये कि अतिथि के भोजन कर लेने के पश्चात
ही भोजन करें।

यश्च नो ब्राह्मणान् हन्याद् यश्च नो ब्राह्मणान् द्विषेत्।
न नः स समितिं गच्छेद् यश्च नोनिर्वपेत कृषिम् ॥33॥

भावार्थ: विप्रों से द्वेष, और मारे उन्हें, जो खेती काट ले जाता है।
वह किसी सभा में जाने का, हरगिज अधिकार न पाता है॥

विशेष : यश्च नोनिर्वपेत् कृषिम्– इस चरण का यह अर्थ भी हो सकता हैं–जो अपने हाथ से खेती न करे बीज न बोये उसे समिति में जाने का अधिकार नहीं है।

तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्ते कदाचन॥34॥

भावार्थ: अतिथि सेवा में सुजन के घर, ये चार वस्तुएं रहती हैं।
बैठन को चटाई तिनकों की, सोने को भूमि होती है॥
जल शीतल रहे पिलाने को, इस के अलावा मीठा रस।
मीठी मधुर सत्यवाणी रहे, यूं बढ़ता रहता कुलों का यश॥

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतिम्।
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम्॥35॥

भावार्थ: सज्जनों के घरों में हे राजन!, धार्मिक पुण्य कर्मी आत्माओं को।
श्रद्धा सत्कार से पेश करें, ऊपर की चारों वस्तुओं को॥

सूक्ष्मोऽपि भारं नृपते स्यन्दनो वै
शक्तो वोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति
महाकुलीना न तथाऽन्ये मनुष्याः॥36॥

भावार्थ: रथ छुद्र भी होकर ढ़ोता भार, वृहद लक्कड़ बोझ न ढ़ो सकता।
इस कारण राजन्! कुलीन ही नर, दायित्व का बोझा ढ़ो सकता।

न तन्मित्रं यस्य कोपाद् बिभेति
यद्वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्।
यस्मिन् मित्रे पितरीवाश्वसीत
तद्वै मित्रं सङ्गतानीतराणि॥37॥

भावार्थ: जिस मित्र से शंका–भय होता, कभी मित्र वह मित्र नहीं होता।
यदि पिता तुल्य विश्वास नहीं, तो मित्र महज साथी होता ॥

य: कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं स गतिस्तत्परायणम् ॥38॥

भावार्थ: कुछ भी सम्बन्ध ना रखता हुआ, जो अपना सहाई होता है।
है मित्र वही और बन्धु वही, पूर्ण आश्रय दायी होता है॥

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवत:।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रुवो मित्रसंग्रह: ॥39॥

भावार्थ: जिनके चित्त चंचल वृद्ध न संग, हों उन के मित्र न अचल कभी।
जिन्हें माना जाता मित्र आज, बन जाते रिपु कल उन के वही॥

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम्।
अर्था: समतिवर्तन्ते हंसा: शुष्कं सरो यथा॥40॥

भावार्थ: चंचल, मूढ़ों, इन्द्रिय दासों को, तज देते ऐश्वर्य सब ऐसे।
नित सूखे हुये सरोवर को, हंस छोड़ चले जाते जैसे॥

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्तत:।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा॥41॥

भावार्थ: विन बात क्रोध में आ जाना, और बिना वजह होना प्रसन्न।
चंचल मेघों की तरह सदा, दुष्टों की मति होती राजन!॥

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये।
तान् मृतानपि क्रव्यादा: कृतघ्नान्नोपभुञ्जते॥42॥

भावार्थ: निज मित्रों से इज्जत पाकर, निज स्वार्थ पूर्ण कर हट जाते।
ऐसे कृतघ्न दुष्ट मित्रों का, कभी गिद्ध भी मांस नहीं खाते॥

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसति वा धने।
नानर्थयन् प्रजानीयात् मित्राणां सारफल्गुताम्॥43॥

भावार्थ: धनवान हो चाहे हो निर्धन, विन मांगे मित्र सत्कार करे।
मित्रों के सार फर्क पनकी, कभी कोई परीक्षा नहीं करें॥

सन्तापाद् भ्रश्यते रूपं सन्तापाद् भ्रश्यते बलम्।
सन्तापाद् भ्रश्यते ज्ञानं सन्तापाद् व्याधिमृच्छति॥44॥

भावार्थ: हो जाता शोक से रुप नष्ट, और ज्ञान शक्तियां नहीं रहते।
रोगी बन जाता शोक युक्त, सन्तापों को सहते सहते॥

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यन्ति मा स्म शोके मनः कृथाः ॥45॥

भावार्थ: शोक से मिलता कुछ भी नहीं, देह उलटी दुःख बेतहा सहे।
शत्रु कसते है व्यंग बोल, इस लिए शोक न कभी करें॥

पुनर्नरो म्रियते जायते च
पुनर्नरो हीयते वर्धते च
पुनर्नरो याचति याच्यते च
पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥46॥

भावार्थ: नर बार-बार उत्पन्न होता, बढ़ता घटता और मरता है।
खुद मांगे, लोग उससे मांगें, करे शोक अन्यों को कसता है॥
यानी मानव एक रुप में, रह पाता है कभी नहीं।
सुख दुख तो सदा लगे रहते, करें न इनका सोच कभी॥

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च
लाभालाभौ मरणं जीतितं च ।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति
तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥47॥

भावार्थ: उत्पत्ति नाश दुख सुख जग में, लाभ हानि जीवन मरण रहे।
आते है क्रमशः ईष्ट अनिष्ट, इस लिये बुद्ध नित् सम ही रहें॥

चलानि हीमानि षडिन्द्रियाणि
तेषां यद्यद् वर्धते यत्र यत्र।
ततस्ततः स्रवते बुन्द्धिरस्य
छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥48॥

भावार्थ: मन सहित ये पांचों ज्ञानेन्द्रियां, अत्यन्त चपल चंचल होती।
इन केहीबीच से जो इन्द्रिय, जिस विषय के सेवन में बढ़ती।

उसी इन्द्रिय से विषयी नरों की, धी ऐसे रिसने लगती।
ज्यों छिद्रों वाले घट में से, पानी की भरत चूने लगती॥

धृतराष्ट्र उवाच-

तनुरुद्धः शिखी राजा मिथ्योपचरितो मया।
मन्दानां मम पुत्राणां युद्धेनान्तं करिष्यति ॥49॥

भावार्थः छिपी काष्ठ में जैसे आग, जैसे तैसे रगड़ा खा कर।
लकड़ी को जला कर राख करे, खुद भीतर से प्रज्वलित होकर॥
यूं धर्म में रत तेजस्वी धर्म, जिससे मैंने छल कपट किया।
वध मेरे सुतों का कर देगा, यह शोक का कारण बना हुआ॥

नित्योद्विग्नमिदं सर्वं नित्योद्विग्नमिदं मनः।
यत्तत् पदमनुद्विग्नं तन्मे वद महामते ॥50॥

भावार्थः है सभी जगत भय से पीड़ित, शंक भय से हुआ मैं भी आतुर।
इस लिये मुझे उपदेश करो, नित रहूँ मैं इन से रिक्त होकर॥

विदुर उवाच-

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।
नान्यत्र लोभसन्त्यागाच्छान्तिं पश्यामि तेऽनघ ॥51॥

भावार्थः बोले विदुर हे धृतराष्ट्र! तप विद्याके अनुष्ठान बिना।
ऐन्द्रिय विजय बिन लोभ तजे, मुमकिन ही नहीं शान्ति मिलना॥

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥52॥

भावार्थः हे नृप! हटाता भय को ज्ञान, तप से उच्चता ब्रह्म कान्ति मिले।
गुरु भक्ति से मिलता है ज्ञान, और योग के द्वारा शान्ति मिले॥

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥53॥

भावार्थः जीवन मुक्त विज्ञ दान-पुण्य, श्रुति पाठ आश्रय न लेकर।
तज फल सर्वत्र विचरते हैं, सब राग द्वेष से मुक्त होकर॥

विशेष : जीवनमुक्त महात्मा दान भी करते हैं, वेदों का अध्ययन भी करते हैं, परन्तु किसी फल की कामना से नहीं। वे शत्रु मित्र सब में समभाव रखते हैं, इस से उनके राग द्वेष की समाप्ति हो जाती है।

स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मण:।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥54॥

भावार्थ: नित धर्म युद्ध शुभ कर्म बाद, श्रद्धा से अध्ययन करने पर।
परिणाम रुप में सुख मिलता, बहु कड़े तपों के करने पर॥

स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना
न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति
न मागधै: स्तूयमाना न सूतै: ॥55॥

भावार्थ: नृप! द्वेष के कारण भाग्य हीन, कर बैर सुजन को खो देते।
वे सुखमय नर्म सेजपर भी, कभी सुख की नींद न सो सकते॥
कभी सुख न मिले निज प्रेमिका में, भाये न भाट की प्रशंसा।
न भाती स्तुतियां, नहीं मान, कुछ भी तो नहीं उनको भाता॥

न वै भिन्ना जातु चरन्ति धर्म
न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्ना:।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति
न वै भिन्ना प्रशसं रोचयन्ति ॥56॥

भावार्थ: स्वात्मीय भी द्वेष के वश, अभागे अलग रहने वाले।
कर्तव्य कोई न पाल सकें, उन्हें पड़ते सुखों के नित लाले॥

विशेष : आन्तरिक भाव यह है कि यदि तुम धर्म पालन द्वारा सच्चा आत्म सुख चाहते हो तो, पाण्डवों (अपने आत्मीयों) को गले लगा लो।

न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं
योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम्।

भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं
न विद्यते किञ्चिदन्यद्विनाशात् ॥57॥

भावार्थ: स्वजन को द्वेष वश दूर करें, उन्हें भाते नहीं हित कारी वचन।
रख सकें प्राप्त न करें प्राप्त, उन का निश्चित ही होता पतन॥

विशेष : 55 से 56 तक तीन श्लोकों में फूट का वर्णन (आपसी फूट के परिणाम का वर्णन अति संक्षेप में, किन्तु हृदय ग्राही शब्दों में हुआ है।

सम्भाव्यं गोषु सम्पन्नं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु संभाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥58॥

भावार्थ: सम्पत्ति गऊ से सम्भव है,ब्राह्मण में तप होना सम्भव।
नारी में चपलता सम्भव है, स्वजनों से भय भी है सम्भव॥

विशेष : क्या पुरुषों में चपलता असम्भव है ? सम्भावतः असम्भव है। अपवाद अवश्य मिल जाते है।

तन्तवोऽप्यायिता नित्यं तन्तवो बहुलाः समाः।
बहून् बहुत्वादायासान् सहन्तीत्युपमा सताम् ॥59॥

भावार्थ: कुल तन्तु नृप! ये पाण्डव बाल, आप के पाले पोषे हुए।
पांचों सन्तों के तुल्य हैं ये, बहु समय से हैं दुख भरते हुए॥

विशेष : यह कूट श्लोक है, इस का अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है। जैसे सूक्ष्म तारों का एक पुष्ट रस्सा बहुत भार उठा पाने में सक्षम हो सकता है, वैसे ही पाण्डव हैं। एक तो उनमें एकता प्रीति है, दूसरे वे अकेले नहीं हैं, श्री कृष्ण व्यास जी द्रुपद आदि नीति निपुण ऋषि और राजा उनके साथ हैं, अतः उन्हें यह कष्ट दुभर नहीं है, हां इतने कष्टों को सहन करते हुए भी वे शान्त हैं, अतः वे सज्जन हैं, इस में सन्देंह नहीं है।

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥60॥

भावार्थ: हे नृप! लकड़ियां अलग-अलग, जलने पर धुंआ उड़ाती है।
पर जुड़ कर के जल जाने से, अति ज्वाला मय बन जाती है॥
स्वजन भी अलग-अलग रहकर, विद्वेष धुएं में सुलगते हैं।
लेकिन मिल कर शत्रु के लिए, प्रचण्ड ज्वालाएं बनते हैं॥

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु गोषु च।
वृन्तादिव फलं पक्कं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥61॥

भावार्थ: तिय विप्र आत्मीय गऊवों पर, जो वीरत्व दिखलाते हैं।
हों नष्ट वे ऐसे, फल पक कर, ज्यों डंठल से गिर जाते हैं॥

महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रीतिष्ठतः।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ॥62॥
अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ॥63॥

भावार्थ: इकला वली दृढ़ जड़ का पेड़, वायु से गिरा दिया जाता।
छण में ही शाखों तनों सहित, सारा धरती पर पड़ जाता॥
लेकिन जो समूह में खड़े हुए, और दृढ़ मूल वाले होते।
वे घातक तीव्र आंधियां भी, सहयोगी बन सहते रहते॥

एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ॥64॥
अन्योऽन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च।
ज्ञातयः सम्प्रवर्धन्ते सरसीवोत्पलान्युत ॥65॥

भावार्थ: बहु गुण से युक्त नर को भी रिपु, उसके इकला रहजाने पर।
नष्ट करने योग्य समझते यों, आन्धी से पेड़ ज्यों हो भूपर॥
सब स्वजन परस्पर मिल करके, नित-नित ऐसे ही बढ़ा करें।
तालों में जैसे कमल खड़े, अपना सिर ऊँचा किया करें॥

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥66॥

भावार्थ: सम्बन्धी शिशु, गौ, तिय, विप्र, और अन्न जिस का खाया जाता।
ये सभी अवध्य होते हैं, मत करें कभी इनकी हत्या॥

न मनुष्ये गुणः कश्चिद् राजन् सधनतामृते।
अनातुरत्वाद् भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥67॥

भावार्थ: मानव में सधनता और स्वास्थ्य, ये सब से बड़े गुण ही होते।
मृतक जैसा है रोगी पुरुष, बस स्वस्थ पुरुष सम्पन्न होते॥

विशेष : हे राजन्! तुम पाण्डवों का भाग उन्हें दे दो, तभी तुम्हारा कल्याण है।

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगं
पापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम्।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो
मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥68॥

भावार्थ: नृप! क्रोध सहज होता उत्पन्न, नित बुद्धियों को विकृत करे।
दुष्मार्ग फंसावे तीखा कटु, जो देह को निरन्तर तप्त करे॥
सब सुजन इसे पी जाते हैं, अच्छा है तुम भी पी जाओ।
पर दुष्ट न इस को पी सकते, तुम उनके चरित पर न जाओ॥

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते
न वै लभन्ते विषयेषु तत्त्वम्।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव
न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥69॥

भावार्थ: रोगी को मिले शुभकर्म-सुफल, सुत पशु धनादि नहीं भाते।
रस आदि विषय भी व्यर्थ रहें, उन में भी सार नहीं पाते॥
नित रोगी दुखों में फंसे हुए, धन भोग का सुख न ले सकते।
अपने जीवन में कभी भी वे, नहीं सुखों के दर्शन कर सकते॥

पुरा ह्युक्तं नाकरोस्त्वं वचो मे
द्यूते जितां द्रौपदीं प्रेक्ष्य राजन्।

दुर्योधनं वारयेत्यक्षवत्यां
कितवत्वं पण्डिता वर्जयन्ति ॥70॥

भावार्थः हे नृप! जुए में जीती गई, द्रोपदी को देखकरके मैं ने।
था कहा रोक लो निज सुत को, पर माना नहीं था यह तुमने॥
दुष्कर्म जान कर विज्ञ बुद्ध जन, सब जुआ खेलना मना करें।
उस गलत काम का ही फल यह, अब बीता समय पछताया करें।

न तद्वलं यन्मृदुना विरुध्यते
सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्
मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥71॥

भावार्थः दुर्बल जन का जो रोध करे, नहीं शक्ति उसे कहना चाहिए।
सत्य धर्म का तत्व बड़ा गूढ़, इसे तुरन्त ग्रहण करना चाहिए॥
दुष्टों के द्वार आयी लक्ष्मी, बस नाश का कारण बनती है।
सज्जनों के द्वारा बढ़ाई गयी, लक्ष्मी ही हमेशा टिकती है॥

धार्तराष्ट्राः पाण्डवान्पालयन्तु
पाण्डोः सुतास्तव पुत्राँश्च पान्तु।
एकारिमित्राः कुरवो ह्येककार्या
जीवन्तु राजन् सुखिनः समृद्धा ॥72॥

भावार्थः है उचित यही हे धृतराष्ट्र! कौरव पाण्डव मिल समृद्ध रहें।
करें रक्षा एक दूसरे की, सम लक्ष्य समझ कर वे वरतें॥

मेढीभूतः कौरवाणां त्वमद्य
त्वय्याधीनं कुरुकुलमाजमीढ।
पार्थान् बालान् वनवासप्रतप्तान्
गोपायस्व स्वं यशस्तात रक्षन् ॥73॥

भावार्थः कुरु वंश तुम्हारे वश है नृप! इन्हें वश में तुम्हीं कर सकते हो
निज कीर्ति रखे, कष्टों से तपे, पाण्डु पुत्रों की रक्षा करो॥

संधत्स्व त्वं कौरव पाण्डुपुत्रैर्
मा तेऽन्तरं रिपवः प्रार्थयन्तु।
सत्ये स्थितास्ते नरदेव सर्वे
दुर्योधनं स्थापय त्वं नरेन्द्र ॥74॥

भावार्थः पाण्डवों के साथ सन्धि करके, शत्रु को बीच से दूर करे।
पाण्डु के पुत्र तो सत्य पै खड़े, नृप! दुर्योधन को वश कर लो॥

चतुर्थ अध्याय समाप्त्

पंचम अध्याय

विदुर उवाच-

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्।
वैचित्रवीर्य पुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥1॥
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत्।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृहणतस्तथा ॥2॥

भावार्थ: बोले विदुर हे धुतराष्ट्र! ये मनु ने सत्रह मूढ़ कहे।
चार्हे पकड़ें चन्द सूर किरण, और इन्द्र धनुष नीचे करदें॥
ब्रहमाण्ड में छये नभ को भी, मुट्ठी से पीट्ना चाहते हैं।
या मानो हथेली पंर सरसों, ये मूर्ख जमाना चाहते हैं॥

विशेष : पिछ्ले अध्याय में 51 वे श्लोक से विदुर जी का प्रवचन गतिमान था। धृतराष्ट्र के प्रश्न के बिना ही एक नया अध्याय आरम्भ किये जाने से यह प्रक्षिप्त प्रतीत होता है।

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद्
यश्चातिवेलं भजते द्विष्न्तम्।
स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते
यश्चायाच्यं याचते कत्थते वा ॥3॥

यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्य
यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति
यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥4॥

बध्वाऽवहासं श्वसुरो मन्यते यो
वध्वावसन्नभयो मानकामः।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं
स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम् ॥5॥

यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीति वादी
दत्वा च यः कत्थति याच्यमानः।
यश्चासतः सत्त्वमुपानयीत
एतान्नयन्ति निरयं पाशहस्ताः ॥6॥

भावार्थः शासन उन पर करना चाहें, हो सके नहीं शासन जिन पर।
हो छुद्र लाभ से ही प्रसन्न, रिपु सेवा, नियम उल्लघंन कर॥
अयोग्य तिय की रक्षा करें, उन की सेवा में सुख चाहते।
उपहास करें सुत बंधुओं से, बधु साय बसे इज्जत चाहते॥
जो मांगे धन कंजूसों से, हैं चापलूस स्व प्रशंस करें।
वस्तु लेकर भी जायें भूल, हो कुलीन भी निन्दित कर्म करें।
चाह करते अकाम्य वस्तुओं की, और झूठ को सच्चा सिद्ध करें।
निर्बल हो बली से बैर करें, और श्रद्धा हीन को शिक्षा दें।
औरों के खेत में बीज बौयें, मर्याद छोड़ तिय निन्दा करे।
मांगने पर जो करके दान, गर्वित हो आत्मश्लाघा करें।
इन सतरह तरह के लोगों को, हायों में सख्त बन्धन लेकर।
हे नृप! सदा यमराज दूत, सब को छेड़े नर्क ले जा कर।

विशेष : यहां पौराणिक यमराज और उसके दूतों का वर्णन नहीं है। यमराज का अर्थ है– न्यायकारी परमेश्वर और पाश हस्त दूत हैं। उसकी सर्वत्र फैली हुई व्यवस्याऐं। यहां काव्य मयी भाषा में पाश हस्त दूतों का वर्णन है।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यस्
तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ॥7॥

भावार्थः जैसा भी कोई व्यवहार करे, वैसा ही उस के साय करें।
दम्भी कपटी से कपट दम्भ, साधु से साधुता को बरतें॥

जरा रुपं हरति हि धैर्यमाशा
मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया।
कामो ह्रियं वृत्तमनार्य सेवा
क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः ॥8॥

भावार्थः दोष रोप से धर्माचार, लज्जा को काम निश्चित खोता।
आशा से धैर्य, रुप जरा से, जीवन मृत्यु से नष्ट होता॥
और संग दुष्टों का सदाचार, गुस्सा धन सम्पत्ति खा जाए।
जिस के कारण कुछ बचे नहीं, अभिमान सभी कुछ ले जाए॥

धर्तराष्ट्र उवाच-

शतायुरुक्तः पुरुषः सर्ववेदेषु वै यदा।
नाप्नोत्यथ च तत्सर्वमायुः केनेह हेतुना ॥9॥

भावार्थः वेद शास्त्र मानव की उम्र, जब एक सौ वर्ष बताता है।
फिर विदुर कहो सारी आयु, क्यों मनुष्य भोग नहीं पाता है?

विदुर उवाच-

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥10॥

भावार्थः बोले विदुर हे नृप! सुनो, खुदगर्जी अहम् गुस्सा करना।
अतिशय भाषण, न देना दान, अपने तक सीमित रहना॥
मित्रों के साथ भी द्रोह करें, ये छह के छह हैं वे कारण।
मानव को जिनके होने से, पड़े मरना स्वयं ही हे राजन्!

एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवाघ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥11॥

भावार्थः मद आदि पूर्व छह खड्ग नरों की, उम्र काट सभी को मारती है।
नृप! अहम् त्याग कल्याण करो, नही मौत किसी को मारती है॥

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत॥12॥

आदेशकृद् वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः।
शरणागतह्म चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः।
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥ 13 ॥

भावार्थः विश्वास पात्र की पत्नि अरु, करे भोग गुरु की नारी से।
द्विज धर्म घातिका पत्नि-पति, मदिरा पीते दुराचारी से।
शरणागत का जो करें घात, विद्वान को दास बनाया करें।
मनमाना हुक्म दे पूज्यों को, पिण्ड इन से छुड़ा तोबा करले ॥

विशेष : समेत्य का प्रसिद्ध अर्थ मिलकर है, परन्तु यहां प्रकरण के अनुसार (सम+एत्य अच्छी प्रकार उलांघ कर त्याग करके संगत होता है।

गृहीतवाक्यो नयविद् वदान्यः
शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च।
नानर्थकृत्याकुलितः कृतज्ञः
सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान ॥ 14 ॥

भावार्थः दानी, विज्ञ और नीतिवान, जो बड़ों का आज्ञाकारी है।
दुष्कर्मो और हिंसा से दूर, यज्ञ शेष खाये यज्ञकारी है।
अहसान को माने सत्य कहे, अति कोमल नम्र स्वभावका है।
सुख साधन सम्पन्न होता वही, स्वर्ग ऐसे ही महानुभाव का है।

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥ 15 ॥

भावार्थः मृदु प्रियं भाषी, नर चाटुकार, दुनिया में सरलता से मिलते।
हितकर कड़ुवी जो कहें सुनें, नर वे ढूंढे से नहीं मिलते ॥

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ॥ 16 ॥

भावार्थः राजा को लगे अच्छा या बुरा, जो इस की चिन्ता करे नहीं।
प्रिय न लगे कहता हितकर, है नृप का सच्चा मित्र वही ॥

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥17॥

भावार्थः कुल शान्ति-वृद्धि हित एक तजे, कुल छोड़े नगर बढ़ाने को।
प्रदेश के हित में नगर तजे, आत्मोन्नति हित राज्य जमाने को॥

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि॥18॥

भावार्थः विपद के हित धन बचा-बचा, धन बचा बचा स्त्री रक्षे।
और धन स्त्री इन दोनों से, जिस तरह भी हो खुद को रक्षे॥

द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्॥19॥

भावार्थः थी बैर की थी अति न्यून कभी, द्यूत तब भी बैर बढ़ाता था।
अत्यन्त बढ़ी अब तो रिपु थी, तब तो इस द्युत का कहना क्या?
इसलिए बुद्धों को लाजिम है, न खेलें जुआ मज़ाक में भी।
निश्चय ही जुआ कर देता नाश, जीवन को मिलाता खाक में ही॥

उक्तं मया द्यूत कालेऽपि राजन्
नेदं युक्तं वचनं प्रातिपेय।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य
न रोचते तव वैचित्रवीर्य॥20॥

भावार्थः मैंने तो राजन्! उसी समय, द्युत का था कड़ा विरोध किया।
यूं लगे न हितकर बोल तुम्हें, ज्यों रुग्ण को पथ्य कड़वी दवा॥

काकैरिमाँश्चित्रबर्हान् मयूरान्
पराजयेथाः पाण्डवान् धार्तराष्ट्रैः।
हित्वा सिंहान् क्रोष्टुकान् गूहमानः
प्राप्ते काले शोचिता त्वं नरेन्द्र॥21॥

भावार्थः कौरवों काकों के द्वारा नृप! उन सद्‌गुण चित्रित पंख वाले
मोरों सम सुन्दर पांडवों को, तुम जीतना चाहते हो आले!

सिंहों को छोड़ कर स्यारों की, क्यों रक्षा करना तुम चाहते ?
पर याद रहे वक्त आने पर , रह जाओ गे तुम ही पछ्ताते ॥

यस्तात न क्रुध्यति सर्वकालं
भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन् भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति
न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥22॥

भावार्थः नित हित में लगे भक्त सेवकों पर, स्वामी जो क्रोध नहीं करते।
भक्त उन का करें विश्वास नृप! कभी विपद में उन को नहीं तजते॥

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन
राज्यं धनं संजिघृक्षेदपूर्वम्।
त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाः
स्निग्धा ह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥23॥

भावार्थः सेवक का वेतन रोक रोक, धन-राज्य गैर का न हड़पे।
वृत्ति छिन कर धन हीन भक्त, राजा को छोड़कर रुद्ध बने॥

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वा-
ण्यायव्यये चानुरुपां च वृत्तिम्।
संगृह्णीयादनुरूपान् सहायान्
सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥24॥

भावार्थः जो काम कराने सेवकों से, उनको समझे आय-व्यय जाने।
कर यथा वृत्ति वेतन प्रबन्ध, उपयुक्त सहायों को ठाने॥
शासन प्रबन्ध है क्यों कि कठिन, बिन उचित सहायक नहीं चलता।
हों आत्म शुद्ध कर्मी भी सभी, राजा इकला क्या कर सकता ?

अभिप्रायं यो विदित्वा तु भर्तुः
सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः
शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥25॥

भावार्थः प्रमाद रहित सेवक नृप के, अभिप्राय जान कर काम करें।
कहे जो हितकर स्वामी भक्त, अति श्रेष्ठ शक्ति निज पहिचाने।
निज आत्मा सम है वह सेवक, करुणा का पात्र राजा के लिए।
नित राजा को भी उसके साथ, शुभ आत्म रुप बर्तना चाहिये॥

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनु शिष्टः
प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी
त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥26॥

भावार्थः जो सेवक आज्ञा भंग करे, और जवाब उलट कर देता है।
बकवादी घमण्डी प्रतिकूल, नौकर वह त्याज्य होता है॥

अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं
सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं
दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥27॥

भावार्थः मद शून्य दयालू शीघ्र कार, हो सौम्य शूर युक्ति मय वचन।
बहके न कभी, न कुल हो रुग्ण गुण देख दूत रक्खें राजन्॥

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे
गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो।
न राजकाम्यां योषितं प्रार्थयीत ॥28॥

भावार्थः असमय-समय बुद्ध अन्य घर में, विश्वास से पूरे न जाये।
चाहे न चाही नृप नार, छिप कर न बैठे चौरांहे॥

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्
संसृष्टमन्त्रस्य कुसङ्गतस्य।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति
सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥29॥

भावार्थः अन्तरंग में रहे हों, पूर्व मित्र, शत्रु से मिलें कुसंग करें।
उन्हें स्पष्ट कहें न तिरस्कृत करें, कर कुछ भी बहाना, बचते रहें॥

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः
पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा।
सेनाजीवी चोद्धृतभूतिरेव
व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥30॥

भावार्थः अति दयालु, नृप, नृप का सेवक, अधिकार से वञ्चित अधिकारी।
भ्राता पुत्र सैनिक वेश्या, विधवा शिशुओं की महतारी।
विज्ञों को चाहिए, इन से कभी, न लेन देन व्यवहार करें।
है भला इसी में, गुणियों का, इन से न कभी व्यापार करें॥

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते
बलं रुपं स्वरवर्ण प्रशुद्धिः।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च
श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥31॥

भावार्थः सुगन्ध, सौन्दर्य वर्ण उज्जवल, शोभा, सुकुमारता मीठा स्वर।
देह शक्ति स्वच्छता, स्पर्श नर्म और उच्चनारियां हो घर पर॥
प्रमाद त्याग कर कोई भी हो, जो नियम पूर्वक हैं नहाते।
उन रोज नहाने वालों को, नित लाभ दसों ये मिल जाते॥

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते
आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं
न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥32॥

भावार्थः जो परिमित भोजन करते हैं, पाते हैं लाभ ये छह राजन!
दीर्घायु आरोग्य स्वस्थ शिशु, देह शक्ति इन्द्रिय-सुख पेट-घटन॥

अकर्मशीलं च महाशनं च
लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम्।

अदेशकालज्ञमनिष्टवेष-

मेतान् गृहे न प्रतिवासयेत ॥33 ॥

भावार्थः पेटू प्रमादी जंग निन्दनीय, जिसे देश काल का पता नहीं।

निन्दक वेशी चालाक क्रूर, सातों को घर में रक्खे नहीं ॥

कदर्यमाक्रोशकमश्रुतं च

वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम्।

निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्न-

मेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥34 ॥

भावार्थः कंजूस व कृतज्ञ जंगली धूर्त, अपूज्य-पूजता, दे गाली।

निर्दयी रिपु मूढ़ों से कभी, न विपद में भी होवे सवाली ॥

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं

नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च।

विसृष्टरागं पटुमानिनं चा-

प्येतान् न सेवेत नराधमान् षट् ॥35 ॥

भावार्थः अति प्रमादी आततायी, झूठा है दिखावटी भक्त बने।

खुद चतुर बने, हो स्नेह हीन, कभी छह नीचों का संग न करे।

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायश्चार्थ बन्धनाः।

अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योऽन्यं न सिध्यतः ॥36 ॥

भावार्थः मित्रों को मिलाते सदा अर्थ, अर्थों को बान्धते मित्रवर हैं।

दोनों हैं एक से एक बन्धे, नहीं, बिना बन्धे कहीं सिद्धतर हैं।

मित्रों की सहायता लिये बिना, राज्यादि अर्थ नहीं मिलते।

लेकिन है यह भी सत्य एक, मित्र बिना अर्थ के नहीं टिकते ॥

उत्पाद्य पुत्राननृणाँश्च कृत्वा

वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित्।

स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा

अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥37 ॥

भावार्थ: बच्चों को उत्पन्न करके उन्हें, सद् ज्ञानी योग्य ऋण मुक्त करे।
निर्वाह साधन देकर के उन्हें, कन्या को उचित वर युक्त करे॥
ले बान प्रस्थ जंगल में रहें, तपसी बनने का यत्न करें।
मुनियों की तरह जीवन जीकर, निज जीवन लक्ष्य प्राप्त करें॥

हितं यत्सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम्।
तत्कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥38॥

भावार्थ: प्राणी मात्र और निज सुखमय, वही कर्म करे हित देते जो।
है सब सिद्धियों का मूल मन्त्र, पर करदे प्रभु अर्पण इन को॥

विशेष : श्लोक के उत्तरार्द्ध का अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है, कि मनुष्य (तत्) स्व – पर हित्कारी (कुर्यात) कर्मो को करे। कालान्तर में (ईश्वर) कर्म–फल प्रदाता परमात्मा के फल देने में भी (एतत) यह स्व– पर–हिताचरण (मूलम) मूल है, और यही – (स्वार्थ सिद्धये) सब अर्थो – धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष रुपी चारों पुरुषार्थो की प्राप्ति कराने वाला है।

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्त्वमुत्थानमेव च।
व्यवसायश्च यस्य स्यात् तस्यावृत्तिभयं कुतः ॥39॥

भावार्थ: बल जिसमें निरन्तर बढ़ने का, थिर धी है, असर तेजस्वी पन।
सत्व वृत्ति, धर्म मय उद्यम है, नहीं उसे है रोजी का चिन्तन॥

पश्य दोषान् पाण्डवैर्विग्रहे त्वं
यत्र व्यथेयुरपि देवाः सशक्राः
पुत्रैर्वैरं नित्यमुद्विग्नवासो
यशः प्रणाशो द्विषतां च हर्षः ॥40॥

भावार्थ: पाण्डव के साथ दुष्कलह युद्ध के, होंगे जो दोष उन को देखो।
नृप! इन्द्र सहित देवों गण के, सन्तापों की पीड़ा देखो॥
पुत्रों के साथ नित नित का बैर, हृदय की पीड़ बढ़ाता है।
जो यश का नाश कर देता है, और शत्रु को हर्षाता है॥

भीष्मस्य कोपस्तव चेन्द्रकल्प
द्रोणस्य राज्ञश्च युधिष्ठिरस्य।
उत्सादेयल्लोकमिमं प्रवृद्धः
श्वेतो ग्रहस्तिर्यगिवापतन् खे ॥41॥

भावार्थः भीष्म द्रोण, युधि, मिल के आप, दुनिया को मार सकते ऐसे।
चल टेढा पृथ्वी को धूम केतू, टकरा के नष्ट करदे जैसे॥

तव पुत्रशतं चैव कर्णः पञ्च च पाण्डवाः।
पृथिवीमनुशासेयुरखिलां सागराम्बराम् ॥42॥

भावार्थः सौ पुत्र आपके पाण्डव कर्ण, समता से रहें मिल करके चलें।
सारे भूमण्डल सिंधु सहित, सारे देशों का राज करें॥

धार्तराष्ट्राः वनं राजन् व्याघ्राः पाण्डुसुता मताः।
मा वनं छिन्धि सव्याघ्रं मा व्याघ्रा नीनशन्वनात् ॥43॥
न स्याद्वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम्।
वनं हि रक्ष्यते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् रक्षति काननम् ॥44॥

भावार्थः आप के सुत ये वन हैं अगर, तो पाण्डव व्याघ्र हैं नृप सुनो।
बाघों के साथ बन मत काटो, बाघों को न बन से नष्ट करो।
कभी बन के बिना ना रहें बाघ, नहीं बाघ बिना बन रह सकते।
बन बाघ की रक्षा करते हैं, नित बन को बाघ रक्खा करते॥

न तथेच्छन्ति कल्याणान् परेषां वेदितुं गुणान्।
यथैषां ज्ञातुमिच्छन्ति नैर्गुण्यं पापचेतसः ॥45॥

भावार्थः दुर्बुद्धि मानव औरों के, गुण ज्ञान की इच्छा नहीं करते।
उनके अवगुण ही ढूंढ ढूंढ, खुश मन ही मन में हुआ करते॥

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥46॥

भावार्थः उच्च अर्थ सिद्धि नर चाहता जो, करे, धर्म आचरण सही सही।
ज्यों स्वर्ग से अमृत अलग नहीं, अर्थ यूं ही धर्म से अलग नहीं॥

विशेष : यहां पौराणिक स्वर्ग का वर्णन नहीं है। स्वर्ग का अर्थ है स्वर्-ग- सुख शान्ति-आनन्द प्राप्त कराने का साधन। अमृत का अर्थ है जीवन, अर्थात, आनन्द प्राप्त करने का साधन जीवन से कभी अलग नहीं हो सकता। जीवित मनुष्य नाना प्रकार के सुखों का उपयोग करता है।

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।
तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥47॥

भावार्थ: है जिसका आत्मा पाप मुक्त, नित सत्य धर्म में लगा हुआ।
सब प्रकृति विकृति को उसने, समझो गुण-गुण के जान लिया॥

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥48॥

भावार्थ: नर धर्म अर्थ और काम को जो, तत्समय युक्त अपनाता है।
इस जन्म और परलोक में भी, तीनों ही फलों को पाता है॥

सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति ॥49॥

भावार्थ: खुशी व गम का उमड़ा वेग, कर दे जो शान्त ज्ञानी मानी।
विपदा में कभी घबराये नहीं, धन सम्पदा का बनता स्वामी॥

बलं पञ्चविधं नित्यं पुरुषाणां निबोध मे।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥50॥
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं वलमुच्यते।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥51॥
यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम्।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥52॥
येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद् बलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते ॥53॥

भावार्थ: पुरुषों के पांच बल हों राजन! पहला शारीरिक बल होता।
नित इस पर अहम किया जाता, पर इसका निम्नस्तर होता॥

दूसरा बल है श्रेष्ठ अमात्य, सलाह उचित जो देता है॥
तीसरा बल धन बल होता, जीवन को आश्रय देता है।
कुल बल होता है बल चौथा; पैत्रिक जो कुदरती जोड़ सुनो॥
बल पांचवा प्रज्ञा बल होता, जो सभी बलों को जोड़ता है।
यह सभी से होता श्रेष्ठ ज्येष्ठ, बल कोई न इसके जोड़ का है॥

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ॥54॥

भावार्थः अन्यों की बड़ी हानि करके, निश्चित हुआ बैठा न रहे।
निश्चिंत न होवे बैर बांध, अब उस से मेरा कुछ ना बिगड़े॥

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कः प्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥55॥

भावार्थः नारी राजा, स्वाध्याय, सर्प, रिपु स्वामी भोग और आयु पर।
नहीं बुद्धिमान विश्वास करें, हे नृप! कभी इन आठों पर॥

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्-
चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि
नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥56॥

भावार्थः शुभ कर्म और न स्वस्ति वाचन, विद्या तन्त्र मन्त्र जड़ी सिद्ध ये।
धी बाण से मारे लोगों को, नहीं वैद्य औषधि बचा सकें॥

सर्पाश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥57॥

भावार्थः कुल उत्पन्न नर सिंह अग्नि सर्प, तेजस्वी हुआ करते राजन्!
कभी इन का करें अपमान नहीं, ये कुपित हुए पर हों दुश्मन॥

अग्निस्तजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥58॥
स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥59॥

भावार्थः जग में अग्नि इक महा तेज, लकड़ी में छिपा जो रहता है
उस को मथ कर जब तक न घिसें, तब तक यह शान्त ही रहता है।
काठस्थ आग जब मथने पर, काठों में दीप्त हो जाती है।
तब सभी काष्ठ बन अन्य सहित, सब को ही भस्म कर जाती है।

एवमेव कुले जाताः पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥60॥

भावार्थः उच्च कुल अग्नि से ये पाण्डव, छिमा का तेज छिपाये हुए।
काठस्थ आग सम स्वयं वशे, करें कुल को नष्ट प्रदीप्त हुए ॥

लताधर्मा: त्वं सपुत्रः शालाः पाण्डुसुता मताः।
न लता वर्धते जातु महाद्रुममनाश्रिता ॥61॥

भावार्थः तुम सुतो सहित हो लता नृप! हैं पाण्डव शाल के वृक्ष बड़े।
पर बड़े वृक्ष के बिन आश्रय, ऊपर न कोई भी बेल चढ़े ॥
तुम भी पाण्डव के आश्रय बिन, कभी ऊपर न चढ़ सकते हो।
अतः सब को बिठाओ एक जगह, जितनी जल्दी कर सकते हो ॥

बनं राजंस्तव पुत्रोऽम्बिकेय
सिंहान् वने पाण्डवाँस्तात विद्धि।
सिंहैर्विहीनं हि वनं विनश्येत्
सिंहा विनश्येयुर्ऋते वनेन ॥62॥

भावार्थः निज सुतों को राजन! बन समझो, और पाण्डव को तुम सिंह मानो।
बन बिन सिंहों के जाते उजड़, यह राजन्! तुम निश्चय मानो ॥

पंचम अध्याय समाप्त्

षष्टम् अध्याय-

विदुर उवाच-

ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्रामन्ति यूनः स्थविर आयति।
प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान् प्रतिपद्यते॥1॥

भावार्थः घबरा उठता है, युवा पुरुष, अक्समात् वृद्ध महमां आए।
हो उठ के खड़ा, छूकर के चरण, सम्मान करे, तब चैन आए॥

विशेष : पिछले अध्याय से विदुर जी का ही उपदेश चल रहा है।
अतः नये अध्याय के आरम्भ में विदुर उवाच लिखना असंगत है।

पीठं दत्वा साधवेऽभ्यागताय
आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां
ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः॥2॥

भावार्थः आने पै अतिथि धीर पुरुष, उन्हें आसन दे और पग धोए।
पूछे कुशल फिर अपनी कहे, यदि उचित हो भोजन खिलवायें॥

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च
न मन्त्रवित्प्रतिगृह्णाति गेहे।
लोभाद् भयादथ कार्पण्यतो वा
तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः॥3॥

भावार्थः वेदज्ञ ब्राह्मण जिस भी घर में, भय लोभ, कंजूसी के कारण।
अपनाएं न जल गौ मधुपर्क, कहें आर्य व्यर्थ उनका जीवन॥

चिकित्सकः शल्यकर्ताऽवकीर्णी
स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च।
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च
भृशं प्रियोऽप्यतिथिर्नोदकार्हः॥4॥

भावार्थः निर्दयी चिकित्सक, जर्राह वैद्य, ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट चोर गर्भघाती।
शराबी सैनिक और बेचे वेद, ये पग धोएं तो शर्म आती॥

नही किसी भी काबिल यह नर हैं, बन करके अतिथि घर आयें।
सम्मानित हैं अतिथि प्रिय बड़े, इन के आतिथ्य में चित्त लाएं।

अविक्रेयं लवणं पक्वमन्नं
दधि क्षीरं मधु तैलं धृतं च।
तिला मांसं फलमूलानि शाकं
रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥5॥

भावार्थः घी दूध तेल तिल मांस शाक, रोटी शहद पक्के अन्न को।
फल कन्द सुगन्ध गुड़ वस्त्र लाल, बेचे न कभी, हरगिज इनको॥

विशेष : इन वस्तुओं का प्रचुरता के कारण इनका बेचना पाप माना जाता था। मांस बेचना महा पाप है। क्योंकि इसके मूल में हिंसा है। अथवा ब्राह्मण को इन सभी वस्तुओं को नहीं बेचना चाहिए।

आरोषणो यः समलोष्टकाञ्चनः
प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये
त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥6॥

भावार्थः क्रोध मुक्त सम स्नेह बैर, निन्दा-प्रशंस प्रिया प्रिय त्यागी।
पाषाण स्वर्ण सम शोक रहित, उदासीन पुण्यात्म है सन्यासी॥

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः
सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो
धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥7॥

भावार्थः गाजर मूली शाकादि जड़न, बन चावल खाये इंगुदी फल।
बन बसा, आतिथ्य–यज्ञों में रत, है जितेन्द्रिय तपसी शुद्ध निश्छल॥

विशेष : पांचवा अध्याय बुद्धि के महात्मय से समाप्त हुआ था इस अध्याय का आठ्वां श्लोक उसी बुद्धि के महत्व को दर्शाता

है। इस अध्याय के आरम्भ के सात श्लोक प्रसंग को(पुनरुक्ति के कारण) छिन्न कर देते है। अतः ये प्रक्षिप्त हैं। हां उपदेश अति उत्तम है।

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥8॥

भावार्थः धीमान को हानि पहुंचाकर , न बैठे दूर निश्चिंत हुआ।
उन की बाहें लम्बी होती, वे तरह-तरह से लें बदला॥
सताया गया उन के द्वारा, हानि कर्ता को नष्ट करदे।
इस लिये मेरा क्या कर लेगा, यह सोच कभी ना बैठा रहे॥

न विश्वसेदविश्वस्ते, विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥9॥

भावार्थः जिस पर न यकीं न करें यकीं, अति यकीं नहीं विश्वासी पर।
क्योंकि यकीं से उत्पन्न भय, मानव को नष्ट करता आखिर॥

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत्॥10॥

भावार्थः नर को चाहिए ईष्यालु न हो, तिय रक्षा करे, बांटे खाये।
प्रिय शब्द सरल, स्त्रियों में मधुर, पर वशीभूत न हो जाये॥

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः॥11॥

भावार्थः स्त्रियां है अति सौभाग्यवती, आदर के योग्य घर की शोभा।
ये लक्ष्मी हैं, घर की समृद्धि, करें भली तरह इन की रक्षा॥

पितुरन्तःपुरं दद्यान्मातुर्दद्यान्महानसम्।
गोषु चात्मसमं दद्यात्स्वयमेव कृषिं व्रजेत्।
भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्॥12॥

भावार्थः नर पिता को सौंपे अन्तः भार, माता को पाक, सुत विज्ञ सेवा।
सेवकों को वणज और खुद कृषि, निज आत्मीय करें गऊ की सेवा॥

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्।
तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति ॥13॥

भावार्थः ब्राह्मण से क्षत्री जल से आग, लोह पत्थर से उत्पन्न होता।
इन सब का व्यापक हुआ तेज, निज मूल कारणों में रमता॥
अग्नि हो जल से जैसे शान्त, ब्रह्म तेज के सम्मुख क्षत्रीय नित।
हो लोह आदि सारी धातु, पत्थर पै मारने से कुण्ठित॥

विशेष : उननिषदों में (अग्ने राय) (तेत्तिरीयो ब्रह्म 2/9) अग्नि से जलों की उत्पत्ति बताई है। ब्रह्मण से क्षत्रिय उत्पन्न नहीं होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी मनुष्य ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न होते हैं। पाषाण से लोहे आदि की उत्पत्ति और पाषाण द्वारा उन का शमन भी अटपटा सा लगता है। हमारे विचार से यह श्लोक चिन्त्य और प्रक्षिप्त है।

नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः।
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते ॥14॥

भावार्थः नर श्रेष्ठ कुलों में जन्में हुए, हों तेजवान अग्नि जैसे।
हों क्षमाशील और दोष मुक्त, वे शान्त काष्ठ मय अग्नि से॥
अक्सर रहते हैं पड़े शान्त, कुछ पता नहीं कब भड़क उठें।
परिणाम जान इसलिए नृप!, हित में ही तुम्हारा कदम उठे॥

विशेष : यह श्लोक किञ्चित पाठ भेद से पिछले अध्याय में आ चुका है। द्रष्टव्य श्लोक-संख्या-60

यस्य मन्त्रं न जानन्ति वाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये।
स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ॥15॥

भावार्थः जिस की अन्तरंग को रिपु-मित्र, नही कोई पुरुष जाना करता।
वह सभी तरफ से सावधान, नृप युग युग तक शासन करता।

करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत्।
धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते ॥16॥

भावार्थः नित राजा धर्म और काम अर्थ, सभी सम्बन्धित मामलों में।
करने से पहले कुछ न कहे, मन्त्रणा न ताकि गुप्त खुले॥

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः।
अरण्ये निःश्लाके वा तत्र मन्त्रो विधीयते ॥17॥

भावार्थः एकान्त महल पर्वत में बैठ, तिनकों से रहित निर्जन बन में।
तब मिलके विचारें सभी गुप्त, सुख शान्ति बढ़े नित् शासन में॥

नासुहृत् परमं मन्त्रं भारतार्हति वेदितुम्।
अपण्डितो वापि सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान् ॥18॥
नापरीक्ष्य महीमालः कुर्यात्सचिवमात्मनः।
अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च ॥19॥

भावार्थः जो मित्र न हो, नहीं मित्र विज्ञ, ना इन्द्रजीत पण्डित होकर।
उसे हक न गुप्त मन्त्रणा का, अतः सचिव बनायें परीक्षाकर॥

कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः।
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम् ॥20॥

भावार्थः धर्म अर्थ काम से सम्बन्धित, कर्म जिसके पूर्ण हो जाने पर।
जनता व सभासद जाने उन्हें, वह राजा श्रेष्ठ है सिद्धि तर॥

अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि ॥21॥
कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम् ॥22॥

भावार्थः मोह वश करता जो नीच कर्म, फल उल्टा पाकर के मरता।
सुकर्म शास्त्रीय अनुष्ठान सुखद, न करें तो पछताना पड़ता॥

अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति।
एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मन्त्रं श्रोतुमर्हति ॥23॥

भावार्थः ब्राह्मण जैसे बिन वेद पढ़ा, है श्राद्धों का हकदार नहीं।
यूं राजधर्म– छः गुणों बिना, गुप्त सुनने का अधिकार नहीं॥

विशेष : पूना – संस्करण में यह श्लोक नहीं है। श्राद्ध की मूल भावना है। –श्रद्धा से किया गया कर्म। यहां पौराणिक श्राद्ध की गन्ध भी नहीं है।

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप॥24॥

भावार्थः नृप! स्थिति ह्रास, निज वृद्धि समझ, सन्धि विग्रह आदि छह को जाने।
कोई जिस का भेद न जान सके, उसे सारी धरा राजा माने॥

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्यान्ववेक्षिणः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा॥25॥

भावार्थः निग्रह विग्रह में समर्थ है जो, कर कार्य जांच नित करता है।
भली भान्ति कोष का ज्ञान जिसे, वह भू कोषों से भरता है॥

नाम मात्रेण तुष्येत क्षत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वहरो भवेत्॥26॥

भावार्थः हो तुष्ट नृप पाय राज छत्र, राजेश्वर्य छोड़ विज्ञ कर्मियों पर।
खाये बांट बांट, इकला न हरे, कहीं! भृत्य भिड़ें शत्रु बन कर॥

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं यथा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च॥27॥

भावार्थः ज्यों जानें सही पत्नि को पति, और ब्राह्मण ज्ञानी ब्राह्मण को।
राजा मन्त्री को, नृप, नृप को, यों जानते सम्बन्ध से इनको॥

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद् बले सति।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते नचिरादिव॥28॥

भावार्थः वश में आये वध करने योग्य, नृप! रिपु को छोड़े नहीं कभी।
खुद होवें हीन तो नम्र बने, बन सबल नशे दुख दे न कहीं॥

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियन्तव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च॥29॥

भावार्थः पूज्यों, विज्ञों, ब्रह्मणों, नृपों, बूढ़े बच्चों व रोगियों पर।
प्रयत्न से रोके सदा सदा, यदि क्रोध करे कोई इन पर॥

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते॥30॥

भावार्थः मूढ़ों द्वारा सेवित झगड़े, सब व्यर्थ लड़ाई बुद्ध छेड़ें।
ऐसा करने पर यश मिलता, और वाद सदा को मुंह मोड़ें॥

प्रसादों निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः॥31॥

भावार्थः जिस नृप की सख्ती–प्रसन्नता, सब तरह व्यर्थ हो जाती हैं।
तिय चाहें न ज्यों नामर्द पति, यों प्रजा उसे नहीं चाहती है॥

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानति नेतरः॥32॥

भावार्थः धन मिले का कारण बुद्धि नहीं, न मूढ़ता निधर्नता लाये।
धनवान मूढ़ भी सैकड़ों हैं, जग–चक्र को बुद्ध ही लख पाये॥

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धाँश्च भारत।
धनाभिजातवृद्धाँश्च नित्यं मूढोऽवमन्यते॥33॥

भावार्थः हे नृप! सदा नर मूढ़मति विद्या शील धन वानों का।
वृद्ध बुद्धों का अपमान करें, कुल श्रेष्ठों और चरित्र वानों का॥

अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम्।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा॥34॥

भावार्थः अधर्मी निन्दक क्रोधी मूढ़, दुष्चरित बोल कड़वे बकता।
यह दुर्गुण हों जिस मानव में, वह शीघ्र विपत्ति में फंसता॥

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक्॥35॥

भावार्थः धोखा न देना, करना दान, नित करना पूर्ण अपना कहना।
और मधुर वचन कर देते हैं, सब प्राणी रिपु तक को अपना ॥

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः।
अतिसंक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम् ॥36॥

भावार्थः कृतज्ञ बुद्ध नित सावधान, है नम्र स्वभाव धोखा न करे।
नृप! क्षीण कोष वाला भी यदि, फिर भी नित भाई सहाई मिलें।

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ॥37॥

भावार्थः मन निग्रह धैर्य इन्द्रय निग्रह, व्यवहार स्वच्छता मीठे वचन।
हो दयालूपन, नहीं मित्रद्रोह, गुण सात करें नित धन सम्पन्न ॥

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः।
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप ॥38॥

भावार्थः निज भृत्यों–प्रजा जनों को जो, न बाँट खाये निर्लज्ज कृतघ्न।
नृप ऐसे दुष्ट स्वभावों का,तज देने योग्य होता राजन् ॥

न स रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ॥39॥

भावार्थः न लगे आंख ज्यों सांप हो घर, यों दोषी मित्र, अन्तः मित्र को।
करता है कुपित बर्ताव से निज, नही सुख मय नींद आती उनको ॥

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद् योगक्षेमस्य भारत।
सदा प्रसादनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥40॥

भावार्थः जिन से भी बिगड़ने के कारण, जीवन निर्वाह मुश्किल में पड़े।
तो उन को सदा देवों की तरह, प्रसन्न रखने का यत्न करें ॥

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥41॥

भावार्थः नारी प्रमादी पतितों को, सुदायित्व जो सौंपे जाते।
और दिये काम दुष्ट हाथों में, संदिग्ध सदा माने जाते ॥

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव॥42॥

भावार्थ: जिस कुल व समाज राष्ट्र में भी, तिय मूर्ख जवारी हों राजा।
पत्थर की नाव ज्यों डूबें नदीं, यों डूबे विवश होकर प्रजा॥

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसंगिनः॥43॥

भावार्थ: जो बचा संघर्ष स्वार्थों से, मैं कहता उसे पण्डित राजन्।
क्योंकि संघर्ष स्वारथ ही, होते हैं फंसावट के कारण॥

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः॥44॥

भावार्थ: गुण गान भाट करते जिनका,जुवारी जिस की प्रशंसा करे।
यश गाथा करें जिनकी गणिका, मानव वे जीते हुये मरे॥

हित्वा तान् परमेष्वासान् पाण्डवानमितौजसः।
आहितं भारतैश्वर्यं त्वया दुर्योधने महत्॥45॥
तं द्रक्ष्यसि परिभ्रष्टं तस्मात् त्वमचिरादिव।
ऐश्वर्यमदसम्मूढं बलिं लोकत्रयादिव॥46॥

भावार्थ: अति पराक्रमी धनुर्धारी महा, पाण्डवों को छेड़ जिस कंधे पर।
जो डाला तुम ने राज्य भार, ऐष्वर्य के मद में चूर होकर।
दुर्योधन का मद वैभव नाश, तुम देखोगे राजन्! ऐसे।
तीनों लोकों से भ्रष्ट हुए, जग ने देखा था बलि जैसे॥

विशेष : अन्तिम श्लोक में वामन–बलि की कथा का संकेत होने से यह
श्लोक निश्चय ही प्रक्षिप्त है और बहुत पीछे जोड़ा गया है।

षष्टम अध्याय समाप्त

सप्तम् अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच-

अनीश्वरोऽयं पुरुषो भवाभवे
सूत्रप्रोता दारुमयीव योषा।
धात्रा तु दिष्टस्य वशे कृतोऽयं
तस्माद् वद त्वं श्रवणे धृतोऽहम् ॥1॥

भावार्थः धृतराष्ट्र यह बोले हे भाई! दरिद्रता वैभव के पाने में।
असमर्थ हुआ करता है मनुष्य, ज्यों कठ पुतली पिरोई धागे में।
नर को प्रभु ने भाग्य के वश, रक्खा है मैं भी परवश हूँ।
अतः कहो तैय्यार हूँ मैं, सुनने के लिये भी बेबस हूँ।

विदुर उवाच-

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत ॥2॥

भावार्थः यूं बोले विदुर हे धृत राष्ट्र! बृहस्पति सा बुद्ध व विज्ञ भी अगर।
प्रसंग के विरुद्ध गर बोले वचन, अपमान सहे मूरख बनकर ॥

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रियः एव सः ॥3॥

भावार्थः कह मीठे वचन, कर दान कोई, लोक का प्यारा बन जाता।
है मन्त्र के बल पर प्रिय कोई, पर प्रिय है प्रिय ही भाव का ॥

द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह॥4॥

भावार्थः नर द्वेष करे जिस के भी साथ, नित श्रेष्ठ भी उसको बुरा लगे।
पण्डित भी जंचे ना बुद्ध उसे, नहीं श्रेष्ठ प्रिय न भले, भले ॥

उक्तं मया जातमात्रेऽपि राजन्
दुर्योधनं त्यज पुत्रं त्वमेकम्।

तस्य त्यागत्पुत्रशतस्य वृद्धि-
रस्यात्यागात्पुत्रशतस्य नाशः ॥5॥

भावार्थः दुर्योधन के पैदा होते ही, मैं ने तो कहा था इसे तजो।
सौ इस के त्याग से सुखी रहें, इसे नहीं तजें तो सौ नष्ट हों।
लेकिन वह मेरा उचित कहन, नहीं माना था तुमने राजन!
बस आज यह उसका ही फल है, जो देखने पड़ गये ये दुर्दिन॥

न वृद्धिर्बहु मन्तव्या या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो वृद्धिमावहेत्॥6॥

भावार्थः मानें ना बड़ा उस वृद्धि को, अन्त में जो नाश करा जावे।
इससे तो क्षय ही अच्छा, जो क्षय सद् बुद्धि लावे॥

न स क्षयो महाराज यः क्षयो वृद्धिमावहेत्।
क्षयः स त्विह मन्तव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्॥7॥

भावार्थः वह हानि कहाती हानि नहीं, जो बनती है धी का कारण।
जग में बस क्षय कहो उसे, जो नाश हो बहुतों का राजन्!

समृद्धा गुणतः केचिद् भवन्ति धनतोऽपरे।
धनवृद्धान् गुणैर्हीनान् धृतराष्ट्र विवर्जय॥8॥

भावार्थः कुछ लोग हैं, जग में गुण सम्पन्न, कुछ धन में समृद्ध कहाते हैं।
इनमें उन समृद्धों को तजें, गुण हीन जो माने जाते हैं।॥

धृतराष्ट्र उवाच-
सर्वं त्वमायतीयुक्तं भाषसे प्राज्ञसम्मतम्।
न चोत्सहे सुतं त्यक्तुं यतो धर्मस्ततो जयः॥9॥

भावार्थः यूं बोले नृप हे महा विदुर! तुम यद्यपि भविष्य के ही हित में।
कहते हो बात बुद्ध विज्ञ योग्य, जहां धर्म है जय उसके हित में।
लेकिन फिर भी हे भ्रात सुनो! पुत्र त्याग दूं इतना साहस नहीं।
हूँ मोह माया में फँसा हुआ, कुछ अपने पर विश्वास नहीं॥

विदुर उवाच-

अतीवगुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते ॥10॥

भावार्थः बोले विदुर नर अति गुण से, है युक्त विनय में जो सम्पन्न।
प्राणी मात्र का कष्ट जरा भी, करते न उपेक्षित वे राजन्!

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतन्ते सततोत्थिताः ॥ 11 ॥
सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद् भयम्।
अर्थादाने महान् दोषः प्रदाने च महद् भयम् ॥ 12 ॥
ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः।
युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत् ॥ 13 ॥

भावार्थः निन्दा में दूसरों की रत जो, दुख देते रोध में लगे हुए।
है जिन का दर्श भी दोष युक्त, जिन के संग में भय बड़ा लगे।
धन देन में डर लेने में दोष, धूर्त पापी स्वार्थी निर्लज्ज हैं।
संग योग्य नहीं, नित डालें फूट, मद्यपान करें सब त्याज्य हैं॥

निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति।
या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम् ॥ 14 ॥
यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये।
अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शान्तिमधिगच्छति ॥ 15 ॥
तादृशैः सङ्गतं नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः।
निशम्य निपुणं बुद्ध्या विद्वान् दूराद् विवर्जयेत् ॥ 16 ॥

भावार्थः प्रीत नीच की यारी छुटे पर, होती नष्ट सुख फल जाता।
वह नीच मित्र को नष्ट करने, निन्दित करने का यत्न करता।
जो जरा भी हानि होने से, शान्त न होवे विष उगले।
उस दुष्ट क्रूरी मित्र का संग, बुद्ध तजे तुरन्त तब शान्ति मिले।

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते ॥ 17 ॥

भावार्थः स्वजन रोगी दरिद्र दीन पर, करे दया मोक्ष को पाता है।
सुत पशु सहित हो धन सम्पन्न, सुख समृद्धि ऐश्वर्य लाता है।

ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्य इच्छन्त्यात्मनः शुभम्।
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात् साधु समाचर।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम् ॥ 18 ॥
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः ॥ 19 ॥

भावार्थः जो अपनी भलाई चाहते हैं, अपने आत्मीय बढ़ाते रहें।
नृप! आप भी कुल–वृद्धि हित में, पाण्डवों के हित में न्याय करें।
सुख मिलेगा ऐसा करते ही, वे गुणी आप के आत्मीय हैं
गुण हीन स्वजन की रक्षा अभीष्ट, फिर वे तो आपके रक्षणीय हैं॥

प्रसादं कुरु वीराणां पाण्डवानां विशाम्पते।
दीयन्तां ग्रामकाः केचित् तेषां वृत्त्यर्थमीश्वर ॥20 ॥

भावार्थः प्रजा पालक हे नृप! आप, पाण्डवों वीरों पर दया करो।
कुछ उन्हें छुद्र ही दे के गांव, उनकी जीविका का ठिया करो ॥

एवं लोके यशः प्राप्तं भविष्यति नराधिप।
वृद्धेन हि त्वया कार्यं पुत्राणां तात शासनम् ॥21 ॥

भावार्थः कुछ ग्राम नृप! उनको देकर, यश लोकों में पाना चाहिये।
हे तात! आप हैं वृद्ध बड़े, निज सुतों का राज्य करना चाहिये ॥

मया चापि हितं वाच्यं विद्धि मां त्वद्धितैषिणम्।
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभर्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ ॥22 ॥

भावार्थः स्वजनों से झगड़ा अच्छा नहीं, कल्याण के चाहने वालों को।
मुझ को भी आप के हित में ही, कहना चाहिये सब बातों को।

मुझे अपना हितैषी समझ आप, अपनों के साथ मिल कर के चलें।
और सब के साथ ही हे राजन्! आपस में बांट सुख को बरतें॥

सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन ॥23॥
ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च ॥24॥

भावार्थः मिल कर बोलें, भोगे मिल कर, संग स्वजनों के प्रीति से रहें।
न रोध करें कभी भी परस्पर, स्वजन ही सदादुःख से तारें।
कष्टों में वही डुबाते हैं, लेकिन वे ही उद्धार करें।
दुष्चरित्र फंसाते बीच भंवर, सद् चरित् ही बेड़ा पार करें।

सुवृत्तो भव राजेन्द्र पाण्डवान् प्रति मानद।
अधर्षणीयः शत्रूणां तैर्वृतस्त्वं भविष्यसि ॥25॥

भावार्थः हो नृप! आप सम्मान योग्य, पाण्डव से उचित व्यवहार करो।
उनके द्वारा रक्षित होकर, जय शत्रु पर हर बार करो॥

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति।
दिग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति ॥26॥

भावार्थः विष युक्त बाण कर लेकर ज्यों, मृग बध का पाप व्याधों को लगे।
निज वैभव मय स्वजन को पाय, हो दुखी पाप सम्पन्न को लगे॥

पश्चादपि नरश्रेष्ठ तव तापो भविष्यति।
तान् वा हतान् सुतान्वापि श्रुत्वा तदनृचिन्तय ॥27॥

भावार्थः नृप! अपने सुतों या पाण्डवों को, सुन कर के भविष्य में मरा हुआ।
फिर भी तो प्रायश्चित होगा ही, अतः अभी मानलो कहा हुआ॥

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत्कुर्यादध्रुवे जीविते सति ॥28॥

भावार्थः जिस कर्म को कर खटिया पकड़े, न आंख लगे, सन्ताप बढ़े।
मुंह रहे दिखाने योग्य नहीं, उसे समझ अनिश्चय शुरु न करे॥

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिमत्स्वेव तिष्ठति ॥29॥

भावार्थः नीतिंशास्त्र जनक शुक जीं कों छेड़, नर सारे अनीति पर चलते।
इस लिये तजो बीती को आप, बुद्ध ध्यान भविष्य का ही करते॥

दुर्योधनेन यद्येतत् पापं तेषु पुरा कृतम्।
त्वया तत् कुलवृद्धेन प्रत्यानेयं नरेश्वर ॥30॥

भावार्थः फिर कहा विदुर ने नृप से यह, सोचो समझो इसमें ही भला।
दुर्योधन ने पाण्डव के साथ, जो राज्य हरण का दोष किया।
कुल वृद्ध महाजन के नाते, यह दोष दूर करना चाहिये।
इस लिये नृप! उन का शासन, उन्हें तुरन्त सौंप देना चाहिए॥

ताँस्त्वं पदे प्रतिष्ठाप्य लोके विगतकल्मषः।
भविष्यसि नरश्रेष्ठ पूजनीयो मनीषिणाम् ॥31॥

भावार्थः पाण्डव को सौंपकर उनका राज, तुम पाक और साफ कहाओगे।
दुनिया में कीर्ति फैलेगी, बुद्ध जन में पूजे जाओगे॥

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।
अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥32॥

भावार्थः नर विज्ञों के उत्तम बचनों को, फल परख कर्म को करता जो।
दुनिया में निरन्तर युगों युगों, बनकर के यशस्वी बसता वो॥

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम्।
पापोदयफलं विद्वान् यो नारभति वर्धते ॥33॥

भावार्थः अति कुशलों से भी मिला ज्ञान, है व्यर्थ न वस्तु ज्ञान जिसे।
यदि ज्ञान भी है आचार नहीं, अनुकूल ज्ञान के लक्ष्य के॥
परिणाम पाप का जिन से मिले, बुद्ध कर्म वह आरम्भ नही करता।
बस सोच समझ शुभ ही करता, और उच्च शिखर पर नित चढ़ता॥

यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते।
अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥34॥

भावार्थः जो पूर्व किये दुष्कर्मों को, बिन सोचे पुनः पुनः करता।
वह पाप कर्म में फँसने से, भारी विपदा में है पड़ता॥

मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत्।
अर्थसन्ततिकामस्तु रक्षेदेतानि नित्यशः ॥35॥
मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥36॥

भावार्थः वंश वैभव बढ़े और सफल भी हों, मित्र भेद के समझे द्वार ये छह।
मद नशों से उपजी चित्त जड़ता, लापरवाह भी होना छोड़ दे वह॥
न होना रिपु गुप्तचर का ज्ञान, विश्वास मूढ़ दुष्ट मन्त्री पर।
निज मुख आदि के हाव भाव, ये रक्खें द्वार सभी बन्द कर॥

द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप।
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ॥37॥

भावार्थः रक्खे जो उक्त छहद्वार बन्द, रहे समझ बूझ सावधान सतत्।
धर्म अर्थ काम में तत्पर वह, शत्रु को वश में करे नृप!

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धाननुसेव्य वा।
धार्मार्थौ वेदितुं शक्यौ वृहस्पतिसमैरपि ॥38॥

भावार्थः दोहा–अत्यन्त गूढ़ धर्म अर्थ विषय, है जीवन की खान।
वृद्ध सेवा ग्रंथ पाठ बिन, बृहस्पति को भी न ज्ञान॥

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।
अनात्मनि श्रुत नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ॥39॥

भावार्थः नष्ट हो सिन्धु में गिरा हुआ, और श्रोतागण को कहा वचन।
हो जाता नष्ट हे धृतराष्ट्र!मूढ़ो में शास्त्र भस्मों में हवन॥

मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्ध्या सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत् ॥40॥

भावार्थः बुद्ध मनन सुधी से परीक्षाकर, तै करके योग्यता और दक्षता।
खुद जान देख सुनकर गुणकर, बुद्धों से व्यवहार करें मित्र सा॥

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम्॥41॥

भावार्थः अपयश को नष्ट करती है विनय, पराक्रम कष्ट को दूर करे।
और क्रोध को करती छिमा नष्ट, दुर्व्यसनों को सदाचरण हरे॥

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया।
परीक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च॥42॥

भावार्थः भोग्य सामग्री जन्म का थल, घर सेवा वस्त्र और खाद्यों से।
हे नृप! कुलों की जांच करें, इन सभी बताये लक्षणों से॥

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिवादो न विद्यते।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामासक्तस्य किं पुनः॥43॥

भावार्थः देह मद से रहित जीवन मुक्त भी, स्व प्राप्त अभिष्ट को ले लेता।
तो कामनाओं में फंसे हुये, इन मानवों का तो क्या कहना?

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम्।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत्॥44॥

भावार्थः नृप! ज्ञानी जन के सब सेवकों, प्रियदर्श वैद्य मित्रों वाले।
मृदुभाषी धर्ममय मित्रों की, सब तरह से रक्षा की ठाने॥

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत्।
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशताद्वरः॥45॥

भावार्थः उच्च कुल उत्पन्न या अधम जन्म, मर्याद में जो धर्म कर्म करे।
है निनम्र स्वभाव और लज्जाशील, सौ कुल को पिछड़े आगे बढ़े॥

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति॥46॥

भावार्थः जिन दो लोगों का चित्त से चित्त और धी के साथ धी मिलती है।
मिले भेद गुप्त, गुप्त भेदों से, उन की ही मित्रता चलती है॥

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन्मैत्री प्रणश्यति ॥47॥

भावार्थ: यह बुद्धिमान को लाजिम है, तिनकों से ढके कूपों की तरह।
कृतघ्न व मूढ का त्याग करें, वरना यारी टूटे निश्चय॥

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ॥48॥

भावार्थ: मूढ दुःसाहसी विवेक शून्य, अधर्मी क्रोधी घमण्डियों से।
ज्ञानी कोई यारी न करे, हे नृप! भूल कर भी मन से॥

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ॥49॥

भावार्थ: कृतज्ञ व धार्मिक सत्य उदार, अटल संयमी प्रीति वाला।
विपदा में करे नहीं मित्र त्याग, है मित्र अभीष्ट चाहने वाला॥

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैवतान्यपि ॥50॥

भावार्थ: इन्द्रिय के विषयों से करना दूर, है मौत जीतने से भी कठिन।
विषयों में ज्यादा रखना ध्यान, देवों के लिए भी नष्ट करन॥

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चावमानना ॥51॥

भावार्थ: व्यवहार दया का सब के प्रति, नहीं देखना गुण में कमी कभी।
धैर्य रखना, करलेना सहन, मित्र का न करें तिरस्कार कभी॥
यह कहना है विद्वानों का, गुण ये आयु को बढ़ाते हैं।
करते जो पालन इनका सदा, वह सिद्ध कहाये जाते हैं॥

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।
मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ॥52॥

भावार्थ: बदनियत से नाशे गये धन को, थिर धी का सहारा लेकरके।
जो लेना चाहें सुनीति से, वीरों का आचरण वे करते॥

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तदात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ॥53॥

भावार्थः आगे के विघ्न समझते जो, वर्तमान दृढ़ निश्चय सम्पन्न।
सब कार्य जानते पिछले शेष, धन धान्यों से रहते प्रसन्न॥

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत्॥54॥

भावार्थः मन वचन कर्म से जिस विषय का, नर बार-बार करता सेवन।
वह लेता खींच अपनी ही तरफ, करें अतः सदा शुभ ही चिन्तन॥

मङ्गलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम्॥55॥

भावार्थः गौ स्वर्ण आदि कल्याण प्रद, सब चीजों के पाने का यत्न।
और शास्त्र का पढ़ना बार-बार, सन्तों का पुनः पुनः दर्शन॥
करना उद्यम श्रुति अभ्यास, मन का निरोध सादगी ये।
सुख प्रद सभी गुण होते हैं, सम्मान मिले पालन करके॥

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते॥56॥

भावार्थः उद्योग में रत न करना शोक, ये मूल हैं लक्ष्मी के कारण।
गम रहित उद्योगी बने महा, वह मोक्ष को पाता है राजन्!

नातः श्रीमत्तरं किञ्चिदन्यत् पथ्यतमं मतम्।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा॥57॥

भावार्थः बलियों के वास्ते सभी जगह, हर समय छिमा से नृप! बढ़कर।
नहीं शोभा युक्त हित्कारी कर्म, कल्याणप्रद न कहीं सुखकर॥

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता॥58॥

भावार्थः निर्बल करदे निज हित में छिमा, अन्य उन के लिये सद्कर्म नहीं।
बलवान धर्म हित छिमा करें, है उनके लिये सत्य धर्म यही॥

जो अर्थ अनर्थ में एक से हैं, उनको भी छिमा ही है हित्कर।
इस लिये छिमा कर ही देना, होता है सभी को ही शुभकर॥

यत्सुसखं सेवामानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥59॥

भावार्थः जिस सुख को भोगता हुआ मनुष्य, धर्म-अर्थ से हीन नहीं होवे।
उनका ही यथेष्ट उपभोग करे, विषयासक्त मूढ़ सा ना होवे॥

दुःखार्त्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥60॥

भावार्थः कष्टों से दुखी जो प्रमादी, न माने वेद, प्रभु, पुनर्जन्म।
इन्द्रियदास आलसी निर उत्साह, इन घर न लक्ष्मी धरे कदम॥

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात्सव्यपत्रपम्।
अशक्तं मन्यमानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥61॥

भावार्थः सरल स्वभाव होने से मूढ़, शर्मशील को सरलता के कारण।
निबल जान तिरस्कार करें, अति सरल भी होना कष्ट करन॥

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥62॥

भावार्थः अतिदान शील और अति श्रेष्ठ, अति शूर, मदी और दृढ़ व्रती।
इनके घर में भय के कारण, लक्ष्मी न कभी पग है धरती॥

न चातिगुणवत्स्वेषा नात्यन्तं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान् कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते।
उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते ॥63॥

भावार्थः यह लक्ष्मी अति गुणवानों के, न सदा पास गुण हीनों के।
यह न तो गुणों को चाहती है, न प्रीति करे निर्गुणियों से॥
अन्धी पगली गऊवों की तरह, यह कहीं कहीं टिक पाती है।
कभी आती यहां, कभी जाती वहां, इक ठैर नहीं रह पाती है॥

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्।
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्॥64॥

भावार्थः प्रयोजन यह वेद का हवनादि, उच्च कर्मों के आँचरण का है।
पत्नि का प्रयोजन सुख–सुत अरु, नित सुखमय गृहस्थ चलाना है॥
शास्त्र पठन फल शुभ सुनना, उच्च सदाचार निभाना है।
धन का प्रयोजन दें नित्य दान, और अच्छे भोग में लाना है॥

अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्।
न स तस्य फलं प्रेत्य भुंक्तेऽर्थस्य दुरागमात्॥65॥

भावार्थः पापों के कमाये धन से जो, दानादि कर्म यज्ञ करने से।
माना करता इसके फल में, सुख मिले बहुत परलोकों में॥
लेकिन सच है मरने के बाद, इस यज्ञ व दान के शुभ फल का।
इस कारण लाभ नहीं मिलता, धन लगा है क्योंकि पापों का॥

कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम्॥66॥

भावार्थः जंगल व वनों के बीहड़ों में, घोर विपद युद्ध हल चल में।
कभी मनोबली को भय न लगे, शस्त्रों के बीच रिपु दंगल में॥

उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु॥67॥

भावार्थः मेहनत संयम व चतुराई , याददाश्त धैर्य चेतनता।
शुरु करना सोच समझ के कर्म, तब मिले उन्नति व सम्पन्नता॥

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम्।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम्॥68॥

भावार्थः तपी की शक्ति है तप में, बल विप्र वेद और ईश्वर हैं।
दुष्टों का बसा बल हिंसा में, पर सुजन का बल बस छिमा में है॥

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः।
हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्॥69॥

भावार्थः जल कन्द दूध फल यज्ञशेष, खिलवाए गुरु औषध सेवन।
विप्रों के काम हित खालेना, व्रतों के आठ न ये खण्डन॥

न तत्परस्य सन्दध्यात्प्रतिकूलं यदात्मनः।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते ॥70॥

भावार्थः आचरण जो निज को नहीं भाता, अन्यों के साथ वह नहीं करे।
बस धर्म इसी को कहते हैं, इसके विरुद्ध को अधर्म कहें॥

अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम्॥71॥

भावार्थः नित क्रोध को शान्ति से जीते, शिष्टता से दुष्ट को वश में करे।
कंजूस को जीते देकेदान, और झूठ को सत्य से जीता करे॥

स्त्रीधूर्त्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके॥72॥

भावार्थः डरपोक आलसी नारी धूर्त, क्रुद्ध कृतज्ञ चोर नास्तिक पर।
निज शक्ति पर जो अहम् करे, विश्वास करे ना कभी इन पर॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्त आयुर्विद्या यशो बलम्॥73॥

भावार्थः जो मात पिता और गुरुजन को, पग छू के नमस्ते करते हैं।
करें संग अनुभवी विज्ञ वृद्धों का, बल ज्ञान उम्र यश बढ़ते हैं॥

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।
अरेर्वा प्रणिपातेन मा स्म तेषु मनः कृथाः ॥74॥

भावार्थः धर्म विरुद्ध अत्यन्त कष्ट से, शत्रु के समक्ष झुक जाने से।
धन या प्रयोजन होवे विरुद्ध, उस कर्म की इच्छा नहीं करे॥

अविद्यः पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शोच्यं राष्ट्रमराजकम्॥75॥

भावार्थः मैथुन से न जन्मे शिशु सोच, नर विद्या रहित अतिशोचनीय है।
प्रजा भी भूखी शोचनीय है, विन राजा राष्ट्र शोचनीय है॥

बिन

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वाक्शल्यं मनसो जरा॥76॥

भावार्थः प्राणी के लिये ज्यादा चलना, आयु को क्षीण कर देता है।
कामेच्छा से वंचित तियक्षीण, जल गिरि को क्षीण कर देता है।
बचनों का बाण तो मन के लिए, बुढ़ापे जैसा कष्ट करे।
इस लिये विज्ञों को लाजिम हैं, न कडुवे बोल कभी बोलें॥

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्।
मलं पृथिव्या बाह्लीकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः॥77॥

भावार्थः अभ्यास न करना वेद का मल, न पला व्रत मल विप्रों का।
मल भूमि का वाहलीक देश, और झूठ सदा मल पुरुषों का॥
पुरुषों में रहना कौतुहल, यह साध्वी का होता मल है।
पतियों से अलग प्रदेश रहें, यह पत्नि का निश्चय मल है॥

सुवर्णस्य मलं रुप्यं रुप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम्॥78॥

भावार्थः सोने का मल तो चान्दी है, मल चान्दी का होता रांगा।
होता शीशा मल रांगे का , मल शीशे का उसका मैला॥

विशेष : यह श्लोक प्रक्षिप्त है, क्योंकि किसी अवैज्ञानिक द्वारा बनाया गया है। सोने आदि का मल चान्दी आदि मल कैसे हो सकता है?

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत्स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्॥79॥

भावार्थः सोते रहने से निद्रा को, और कामोपभोग से नारियों को।
ईन्धन से आग, मद्यपेय से नशा, न जीत सकें, कोई व्यसनों को॥

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्॥80॥

भावार्थः दान के द्वारा मित्रों को, युद्ध में जीते निज शत्रुओं को।
भोग्य वस्तुओं से बस में करे, जीवन कौशल हित स्त्रियों को॥

सहस्त्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते॥81॥

भावार्थः दस वाले भी जीते हैं, दस सौ वाले भी जीते हैं।
इस लिये अधिक की चाह छोड़ो, जन बिन धन के भी जीते है॥

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति॥82॥

भावार्थः भूमण्डल में अन्न जौ चावल, स्त्रियाँ पशु वर्गधन आदि स्वर्ण।
इक लोभी को पर्याप्त नहीं, बुद्ध मोह में फंसे ना इस कारण॥

राजन् भूयो ब्रवीमि त्वां पुत्रेषु सममाचर।
समता यदि ते राजन् स्वेषु पाण्डुसुतेषु च॥83॥

भावार्थः कहता हूँ आप से फिर मैं नृप! यदि पाण्डव-कौरवों को इक मानो।
पाण्डवों से वही व्यवहार करो, चाहते जैसा निज पुत्रों को॥

सप्तम् अध्याय समाप्त्

अष्टम् अध्याय

विदुर उवाच-

योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः
करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्त-
मलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः॥1॥

भावार्थः सत्पुरुषों से प्रशंस होकर, निष्काम कर्म बहु करते जो।
वे प्रसन्न नर सुख से रहते, यश वैभव शीघ्र मिलता उन को॥

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं
यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते
जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य॥2॥

भावार्थः धन जो पापों का बहुत बड़ा, आसक्त न होकर त्यागता है।
वह केंचुली तज प्रसन्न सर्प सा, अति विपद छेड़ सुख भाषता है॥

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥3॥

भावार्थः प्रचार नृप की हत्या का, झूठा व्यवहार बड़ों से कर।
नित बढ़ चढ़ कर के कहना झूठ, पालेना जीत झूठा बन कर।
सब उसके कार्य निन्दनीय हैं, महापाप ब्रहम हत्या जैसे॥
जो मानव को करते है ध्वस्त, बच जायें सदा ही बुद्ध इनसे॥

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाघा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः॥4॥

भावार्थः आत्म प्रशंसा झूठी सुख नष्टे, और अहम कीर्ति वैभव नशे।
पर गुण में देखना सिर्फ दोष, मृत्यु है एक दम नाश करे।
करना नहीं गुरु की सेवा, करे आत्म प्रशंसा अति शीघ्रता।
विद्या पाने में तीनों विघ्न, इन दोषों से बच कर रहना॥

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च।
एते वा अष्ट दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ॥5॥

भावार्थ: करना आलस्य और नशा, घर में फंसना और चंचलता।
बेकार की गपशप का करना, होना अभिमानी धी जड़ता।
लालाच के होना वशीभूत, ये दोष हैं आठ विद्यार्थी के।
जो सच मुच विद्या चाहते हैं, वे तज दें दोष दुखार्थी ये।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम् ॥6॥

भावार्थ: पा सके न विद्या सुख चाहक, सुख मिल न सके विद्यार्थी को।
चाह विद्या की सुख अर्थी तजे, सुख तजना अभीष्ट शिक्षार्थी को।

नाग्निस्तृप्यति काष्ठनां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥7॥

भावार्थ: ईंधन से अग्नि तृप्त न हो, सिन्धु न तृप्त सरिता जल से।
सब को भी मार न तृप्त मौत, न तिय तुष्ट कई कई जन से ॥

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः
क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राज-
न्नेकः क्रुद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम् ॥8॥

भावार्थ: वस्तु को पाने की आशा, करती है नष्ट धैर्य को।
मृत्यु करती है ऐश्वर्य नष्ट, और क्रोध देह के सौन्दर्य को।
कंजूसी करती है यश को नष्ट, बिन देखे भाले पशु न रहे।
देकर के ध्यान हे नृप! सुनो, इकला क्रुद्ध ब्राह्मण राष्ट्र नशे ॥

अजाश्च कांस्यं रजतं च नित्यं
मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन
एतानि ते सन्तु गृहे सदैव ॥9॥

भावार्थः कांसी के पात्र चान्दी बकरी, कुल दुखी मनुष्य वेदज्ञ ब्राह्मण।
विष बोधक पक्षी मैना आदि, रहे कुलिन वृद्ध घर में राजन्!

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
विषमौदुम्बरं शंखः स्वर्णनाभोऽथ रोचना॥10॥
गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्।
देवब्राह्मणपूजार्थमतिथीनां च भारत॥11॥

भावार्थः वर्षभ व अजा वीणा चन्दन, तीक्ष्ण शस्त्र घृत मधु दर्पण।
दक्षिणा अमृत शंख ताम्रपात्र और मंगलकर सब गोरोचन।
स्वर्ण नाभ सभी घर में रखे, देव विप्र अतिथि गण के लिये।
हे भरत के वंशज श्रेष्ठ नृप! ये शब्द महा मनुजी ने कहे॥

इदं च त्वां सर्वपरं ब्रवीमि
पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः॥12॥

भावार्थः हित में कहता हूँ खास बात, जो पुण्य दायक है बढ़ करके।
नर लोभ, काम भय में फंस कर, न प्राण रक्षार्थ भी धर्म तजे॥

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वानित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्ये
सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥13॥

भावार्थः इक धर्म ही जग में रहता नित्य, सुख दुख हैं अनित आते जाते।
नित्य है जीव, साधन इसके, पर देह आदि नष्ट हो जाते।
इस लिये अनित्य लख के इन्हें, तुम छेड़ के नित्य में बस जाओ।
है परम लाभ सन्तोष में ही, नृप! आप सन्तोषी बन जाओ॥

महाबलान् पश्य महानुभावान्
प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्।

राज्यानि हित्वा विपुलाँश्च भोगान्
गतान्नरेन्द्रान् वशमन्तकस्य ॥ 14 ॥

भावार्थः महाबली उदार और धन सम्पन्न, मृत नृपों का जीवन देखो।
जो छोड़ गये सब ठाट बाट, यही अपना अन्तिम छण देखो ॥
इस लिये अनित्य सुख के लिये, कभी धर्म त्यागना नहीं चाहिए।
कष्ट आने पर भी नृप! कभी, निज धर्म से न हटना चाहिये ॥

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या
उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तकेशाः करुणं रुदन्ति
चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति ॥ 15 ॥

भावार्थः अति कष्ट उठा कर पाले हुए, घर से काढ़े निज मृत सुत को!
तिय केश खोल कर रुदन् करें! चिनें चिता में लकड़ी सा उसको!

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुंक्ते
वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र
पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः ॥ 16 ॥

भावार्थः अन्य ही भोगते मृत का धन! देह को अग्नि या पशु पक्षी।
पुण्य पाप की छाया लोक से, सिर्फ साथ जाती लिपटी ॥

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान् वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः ॥ 17 ॥

भावार्थः पुष्पों व फलों से रहित वृक्ष, जैसे पक्षी तज जाते है।
यूं मित्र, पुत्र मृतक को छोड़, सम्बन्धी लौट आ जाते है ॥

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयं कृतम्।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद्धर्मं सञ्चिनुयाच्छनैः ॥ 18 ॥

भावार्थः मरने के बाद देह जलने पर, पुण्य पाप किये संग जाते हैं।
करें शनैः शनैः जो संचय धर्म, नर वेही स्वर्ग को पाते हैं ॥

अस्माल्लोकादूर्ध्वममुष्य चाधो
महत्तमस्तिष्ठति ह्यन्धकारम्।
तद् वै महामोहनमिन्द्रियाणां
बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन्॥19॥

भावार्थः है लोक में ऊपर नीचे तिमिर, जो हरता ज्ञान है इन्द्रियों का।
यह समझ करें, बचने का यत्न, न पड़े असर तुम पर इस का॥

विशेष : मनुष्य लोक से ऊपर देवयोनियों और नीचे पशु योनियों में इन्द्रियों के ज्ञान को नष्ट करने वाला, प्रगाढ़ अंधकार है। देव योनियों में मनुष्य इन्द्रियतीत हो जाता है। और पशु योनियों में शुभ कर्मो की शक्ति छिन जाती है।

इदं वचः शक्ष्यसि चेद्यथाव-
न्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके
भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति॥20॥

भावार्थः हे नृप! यह मेरी सुन के बात, यदि समझ अमल में लाओगे।
परलोक लोक में मिले गा यश, और भय से भी बच जाओगे।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था
सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा
पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभ एव॥21॥

भावार्थः नृप! आत्म पवित्र घाटों की नदी, सत् जल तो किनारे हैं धैर्य।
है दया लहर इस नद में नहा, निर्लोभ ही होता शुद्ध पुण्य मय॥

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम्।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर॥22॥

भावार्थः धैर्य, रुप नौका से नृप! इस काम क्रोध की घड़ियाली।
पंच ऐन्द्रिय रुप सी जलवाली, पञ्च ऐन्द्रिय विषय रूपों वाली।

हतः सग्राम क्षात्रयः स्वगमेति ॥ 26 ॥

भावार्थः सब तरफ से अग्नि कुशा से ढक, यज्ञों से यज्ञन श्रुति पढ़कर।
धर्म से सज, प्रजा को पाल, शस्त्र चोटें से उज्जवल होकर॥

इस जग रुपी सरिता से नृप! कर के संघर्ष उतर जाओ।
जीवन संघर्ष चलाते हुये, जन्म मृत्यु भंवर को तर जाओ॥

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं
विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम्।
कार्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य
यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत्कदाचित्॥23॥

भावार्थः कर्तव्य-अकर्तव्य विषय में जो, धी उम्र धर्म विद्या में बड़े।
बन्धु से पूछ रायों से करें, कभी मोह शंका में नहीं पड़ें॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा॥24॥

भावार्थः खान पान भोग में धैर्य धरें, ले परख वस्तु कर को रक्षें।
पथ देख देख पद को रक्षे, निज मन से कान चक्षु रक्खें।
अर्थात् आंख और कानों पर, बस मन का ही नियंत्रण रक्खे।
और कर्मों के संयम द्वारा, मन बाणी को निश्चय रक्ष लें॥

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती
नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
सत्यं ब्रुवन् गुरवे कर्म कुर्वन्
न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात्॥25॥

भावार्थः धरे यज्ञोपवित, नित सन्ध्या करे, जो अग्नि होत्र नियमित करता।
दुष्ट अन्न न ले करे वेद पाठ, गुरु भक्त व ब्राह्मण मुक्त होता॥

अधीत्य वेदान् परिसंस्तीर्य चाग्नी-
निष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च।
गोब्राह्मणार्थं शस्त्रपूतान्तरात्मा
हतः संग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति॥26॥

भावार्थः सब तरफ से अग्नि कुशा से ढ्क, यज्ञों से यज्ञन श्रुति पढ़कर।
धर्म से सज, प्रजा को पाल, शस्त्र चोटें से उज्जवल होकर॥

जो गऊ ब्राह्मण की रक्षा में, बलिदान क्षत्रीय हो जाता।
कल्याण हुआ करता उसका, वह निश्चय ही मुक्ति पाता॥
वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियाँश्च

भाव

भाव

भावा

विशेष

भावा

जो गऊ ब्राह्मण की रक्षा में, बलिदान क्षत्रीय हो जाता।
कल्याण हुआ करता उसका, वह निश्चय ही मुक्ति पाता॥

वैश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियाँश्च
धनैः काले संविभज्याश्रिताँश्च।
त्रेतापूतं धूममाघ्राय पुण्यं
प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुंक्ते॥27॥

भावार्थः गुरुओं से पढ़कर वैश्य वेद, विप्र छत्री भृत्य कर्मियों को।
धन बांट यज्ञों को करते हुये, पाता है द्विव्य तम खुशियों को॥

ब्रह्म क्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः
क्रमेणैतान्न्यायतः पूज्यमानः।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपाप-
स्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुंक्ते॥28॥

भावार्थः शुद्र भी छत्री विप्र वैश्य की, न्यायिक सेवा करता हुआ।
निज व्यथा पाप से होके मुक्त, स्वामी बन जाता स्वर्गों का॥

चातुर्वर्ण्यस्यैष धर्मस्तवोक्तो
हेतुं चानुब्रुवतो मे निबोध।
क्षात्राद् धर्माद्धीयते पाण्डुपुत्र-
स्तं त्वं राजन् राजधर्मे नियुङ्क्ष्व॥29॥

भावार्थः समझो जो कहा चहुँ वर्ण–धर्म, कहता हूँ युधि तुमरे कारण।
निज क्षात्र धर्म से रिक्त हुआ, उसे क्षत्रीय धर्म हित् दो शासन॥

विशेष : युधि – युधिष्ठिर के लिये प्रयोग किया गया है।

धृत राष्ट्र उवाच–

एवमेतद् यथा त्वं मामनुशाससि नित्यदा।
ममापि च मतिः सौम्य भवत्येवं यथात्थ माम्॥30॥

भावार्थः बोले नृप! हे सौम्य विदुर, बिल्कुल सत्य है तुम कहते जो।
मेरा भी सोचना कहन यही, पाण्डवों ही राज अधिकारी हों॥

S-1

सा तु बुद्धिः कृताप्येवं पाण्डवान् प्रति मे सदा।
दुर्योधनं समासाद्य पुनर्विपरिवर्तते ॥31॥

भावार्थ: पाण्डवों का राज्य उन को देदूं, निज धी भी सही बताती है
पर दुर्योधन का संग पाकर, यह फिर उलटी हो जाती है।

न दिष्टमभ्यतिक्रान्तुं शक्यं भूतेन केनचित्।
दिष्टमेव ध्रुवं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम् ॥32॥

भावार्थ: नहीं भाग्य बदल सकता प्राणी, मैं अटल भाग्य को मानता हूँ।
पुरुषार्थ भी है बेकार यहां, होनी बलवान जानता हूँ॥
पाण्डवों का राज न लौटाकर, भाग्य संग्राम करा रहा है।
सारे कुरु कुल को यही भाग्य, अब नाश की ओर बढ़ा रहा है।

विशेष : भ्रान्तचित्त मनुष्य ही भाग्य में विश्वास करते हैं। परन्तु प्रबल पुरुषार्थ से भाग्य को भी बदला जा सकता है।

अष्टम अध्याय समाप्त